RNI No. : UPHIN-2009/29369

डाक पंजीकरण : MISC/CPM/01/KPHO/2019-21
प्रधान डाकघर कानपुर-डाक प्रेषण दिनांक 29/30

वार्षिक सदस्यता शुल्क 100/-

द्रविड़ भारत

www.dbindia.org.in

सामाजिक परिवर्तन का मासिक पत्र

अगस्त 2019 | वर्ष – 11 | अंक : 07 | मूल्य : 5/-

सम्पादकीय

RNI No. : UPHIN-2009/29369

संपादक : उमेश्वरी देवी, मो.: 9005204074

संरक्षक मण्डल :

मा. रामदीन अहिरवार (महोबा), मा. राम अवतार चौधरी (इं. जल संस्थान), मा. छविलाल वर्मा (चरखारी), मा. हरिनाथ राम (दिल्ली), मनीष कुमार मो. 9415053621

कानूनी सलाहकार :

एड. रामप्रकाश अहिरवार, एड. यू.के. यादव, मोती लाल वर्मा, एड. विजय बहादुर सिंह राजपूत, एड. रमाकान्त धुरिया, एड. सुशील कुमार

राज्य उत्तर प्रदेश राज्य ब्यूरो प्रमुख :

सुनीता धीमान, 414/12, शास्त्री नगर, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 9450871741

क्षेत्रीय सम्पादकीय कार्यालय :

40/69, डी-5, श्यामलाल का हाता, परेड, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 8756157631

मध्य प्रदेश राज्य :

ब्यूरो चीफ मुकेश कुमार अहिरवार, छत्तरपुर, मो.: 09039546658

छत्तीसगढ़ राज्य :

दिलीप कुमार कोसले, मो. : 09424168170

दिल्ली प्रदेश :

C/o अनिल कुमार कनौजिया C-260, हर्ष विहार, हरिनगर एक्सटेंशन पार्ट-III, बदरपुर, नई दिल्ली-44, मो. : 09540552317

राजस्थान राज्य :

रघुनाथ बौद्ध, श्याम रघु फुट वियर, दुकान नं.-1, गणेश मार्केट, पुलिस चौकी के सामने, अलवर, जिला-अलवर-301001, मो. : 09887512360

चिरंजीलाल बैरवा (व्यावस्थापक) मेहरा आदर्श विद्या मन्दिर, भीम नगर कालोनी, राज भट्टा, दिल्ली रोड, अलवर, जिला-अलवर, मो.-09829855349

बाबूलाल बौद्ध, अलवर, मो.-08058198233

हरियाणा राज्य :

डा. रमेश रंगा, ग्राम-सराय, औरंगाबाद, पो.-बहादुरगढ़,जिला-झज्जर (हरियाणा),09416347052

संपादकीय/विज्ञापन प्रसार/पंजीकृत कार्यालय :

ग्रा व पो.-रिवई (सुनैचा), जिला-महोबा (उ.प्र.)

मो. : 9005204074, 8756157631

E-mail : dravinbharat1@gmail.com

प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वामी

उमेश्वरी देवी द्वारा ग्रा. व पो.-रिवई (सुनैचा), जिला महोबा से प्रकाशित व श्रेय ऑफसेट प्रा. लि., 109/406, नेहरू नगर, कानपुर, 84/1, बी, फजलगंज, कानपुर

प्रकाशित पत्रिका में प्रकाशित लेख, सामग्री, में संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। इसमें किसी भी प्रकार का दावा या विचार मान्य नहीं होगा। लेख के विवादित होने पर लेखक ही उत्तरदायी होगा समस्त विवादों का निपटारा महोबा न्यायालय में होगा पत्रिका का संपादन एवं संचालन पूर्णतयः अवैतनिक एवं अव्यवसायिक है।

मिशन को बढ़ाने के लिए सहयोग करें -
भारतीय स्टेट बैंक, शाखा-नवीन मार्केट, कानपुर
खाता सं.-33496621020 • IFSC CODE-SBIN005307

जन्माष्टमी

भाद्र मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को कृष्ण का जन्म हुआ था। कृष्ण को हिन्दु 16 कलाओं वाला 10 अवतारों में एक अवतार मानते हैं और भगवान मानकर उनकी अराधना करते हैं। इस दिन जन्मोत्सव की झांकियाँ निकाली जाती हैं, व्रत रखा जाता है और ब्राह्मणों को भोजन व दान दिया जाता है। रासलीला होती है। गीता का पाठ किया जाता है और महाभारत की कथा कही जाती है। कृष्ण की जन्माष्टमी का आयोजन आर्य अनार्य संघर्ष, एवं अनार्य दमन की स्मृति का पर्व है। एक कथा इस प्रकार है।

एक राजा केदार था। वृन्दा उसकी कन्या थी। श्रीकृष्ण उसे ले गए। जहाँ वृन्दा रही थी वह वृन्दावन पड़ा। मथुरा मधुनामक एक दैत्य वंशी अनार्य राजा ने बसाई थी शत्रुघ्न से मधु की लड़ाई हुई थी और धोखे से मधु को मारकर आर्यों ने मथुरा छीन ली थी। द्वापुर में भोजवंशी अनार्य राजा उग्रसेन के लड़के कंश ने अधिकार कर लिया था और वह राज्य कर रहा था। कंश की बहन देवकी थी उसका विवाह युद वंशी सरदार वसुदेव से हुआ था। वह भी अनार्य था। इनमें बहुत प्रेम था। यह बात आर्यों को खटकती थी। आर्य पुरोहित नारद ने कंश व वसुदेव में लड़ाई कराने के लिए कान भरे कि देवकी का 8वां बच्चा तुम्हारा काल है। कंश धोखे में आ गया। जब पहला बच्चा हुआ तो कंश ने छोड़ दिया पर नारद ने फिर गुमराह किया कि हर बच्चा आठवाँ हो सकता है, तो गुमराह कर उस बच्चे को जल्लादों से मरवा डाला और बराबर हर बार आकर नारद बच्चे के पैदा होते ही मरवा डालता था। इस प्रकार 7 सन्तानें मरवा दी गई। आठवीं सन्तान कृष्ण थे। आर्य पुरोहित नारद आदि ने पैहरे के सिपाहियों को लालच देकर अपनी ओर मिला लिया और चोरी–चोरी फाटक खोल कर वसुदेव व कृष्ण को निकाल ले गए। इधर कान भरकर वसुदेव को कंश के और कंश को वसुदेव के विरूद्ध कर दिया। आपसी संघर्ष के होने पर ही आर्य कंश पर विजय पा सकते थे यह ब्राह्मण आर्यों की योजना थी। एक कन्या कृष्ण के स्थान पर ला दी गई और कंश को धोखा दिया गया। नारद ने इसे भी एक धोवी द्वारा कंश से कहकर मरवा डाला। कृष्ण जब बड़े हुए तो नारद ब्राह्मण ने उन्हें भड़काया कि कंश ने तुम्हारे सात भाई मरवा डाले हैं। इस पर कृष्ण कंश के दुश्मन हो गए, और ब्राह्मण आर्यों की सहायता से उन्होंने कंश को मार डाला। आर्य लोग कृष्ण का जन्म मनाते हैं जो आर्य और अनार्य संघर्ष और अनार्य राजा कंश के विनाश की स्मृति में मनाया जाता है। विडम्बना है कि शूद्र अपने वंश के राजा कंश के हत्यारों के इशारे पर असली याद भूलकर इसे पर्व की भांति मनाते हैं। यह उनके मनाने का त्यौहार नहीं है।

विधि–विधान – अष्टमी के दिन रात में गीत तथा बाजों के साथ जागरण किया जाता है। कृष्ण जन्म की कथा कही जाती है और ब्राह्मणों को भोजन तथा दक्षिणा से सन्तुष्ट किया जाता है। इस दिन जन्मोत्सव की झाकियाँ सजाई जाती हैं। झाकियों में देश का अरबों रूपया एक रात में नष्ट हो जाता है जो बनियों के पेट में चला जाता है। रात में कृष्ण मन्दिरों में पूजा होती है और जवान स्त्री पुरूष उन्मत्त होकर नाच करते हैं।

उद्देश्य एवं रहस्य – शूद्र दमन की यादगार का यह व्रत है ही परन्तु शूद्रों के पूर्वज कंश की हत्या को एक दुराचारी आदमी के रूप में प्रदर्शित कर शूद्र मस्तिष्क में कंश के प्रति घृणा पैदा करने के उद्देश्य से यह व्रत मनाया जाता है ताकि शूद्र कंश की हत्या जो ब्राह्मण और कृष्ण के षड़यन्त्र से की गई है, भूल जाएँ। कृष्ण एक राजद्रोही था, गैंग बनाकर कृष्ण ने कंश राज्य के विरूद्ध विद्रोह किया ग्वालों की गैंग बनाई। कंश को कृष्ण ने आर्यों से मिलकर मारा और बाद को इन्द्रादि आर्य राजाओं ने कृष्ण से युद्ध किया और फूट डालकर एक के बाद दूसरे शूद्र राजाओं को मारकर समाप्त करने की योजना बनाई पर कृष्ण मजबूत निकला हार नहीं मानी और विजय पाई। इस गद्दारी को छिपाने के लिए और खुश करने के लिए आर्य पुरोहित ने कृष्ण जन्म पर्व के रूप में मनाना आरम्भ कर दिया।

कृष्ण यद्यपि आर्य नहीं था पर वह कुल द्रोही था। अपने ही अनार्य वंश नाश हेतु वह आर्यों से मिल गया। आर्यो के साथ छल कपट से उसने मात्र राज्य पाने के लिए कंश को मारा, शिशुपाल का वध किया और नाग वंशी राजा कलिया को आर्य ग्वालों को साथ ले जाकर मारा। वह आर्यों से मिल गया और नीच बना। उसने युधिष्ठिर के यज्ञ में जूठन खाई और उठाई तथा नाई की तरह दुर्योधन की पैर चप्पी की, अर्जुन का रथ हांका और अनार्यों की हत्याएँ कराता रहा। कीचक अनार्य को पाण्डवों से मिलकर मरवा डाला। कृष्ण कहीं का राजा नहीं था पर उसने ग्वालों की गैंग बना ली थी। वह राज्य लोभ से अनार्य वंश की हत्याएँ कराता रहा। आर्यों का प्रिय बना रहा। उसके इन कुकर्मों को छिपाने और अनार्य दमन को आर्यों ने उचित ठहरने के उद्देश्य से उसको अवतार की मान्यता देकर भगवान बना दिया। कृष्ण ने इतना ही नहीं किया, उसने तो गीता में शूद्र को नीच कहा और ब्राह्मणों की हां में हां मिलाकर शूद्र को पैरों से पैदा हुआ बताया इसके फलस्वरूप सारा अनार्य वर्ग नीच और अधम बन गया। कृष्ण की वाणी को ईश्वरीय विधान प्रमाणित करने के लिए कृष्ण को ही भगवान बना दिया। पर आर्य ब्राह्मण, क्षत्री ने अपनी पूजा कृष्ण से कराई। कृष्ण के तमाम विलासिता, व्यभिचार, बलात्कार, अनाचार और पाप कर्म करने के बाद भी उसे अवतार कहते रहे, यह उनकी चाल थी क्योंकि ये सारे पाप कर्म वह अनार्य स्त्री वालाएँ पुरूष एवं राजाओं के ही साथ करता था। स्मरण रहे कृष्ण की जन्माष्टमी का पर्व शूद्र विरोधी है और शूद्रों का यह त्यौहार नहीं है, यद्यपि कृष्ण शूद्र था।

कृष्ण ने कौरव पाण्डवों को लड़ाकर दोनों वंशों का नाश करवा दिया कौरवों को युद्ध में मरवा डाला और पाण्डवों को हिमालय में गला कर मार डाला। इतना ही नहीं कृष्ण ने अपने वंश में कलह पैदा कर दी और यदुवंश का विनाश करवा दिया। अन्त में वह मथुरा छोड़कर द्वारिका को भाग गया वहाँ एक बहेलिए ने मार डाला। चूँकि ब्राह्मण पेटू है अपनी पूजा और दान का लालची है उसने इस अवसर पर भी दान धन लेने के लालच से कृष्ण जन्म अष्टमी के मनाने का महात्म्य स्थापित कर दिया है। जेल के फाटक अपने आप खुल गए, सन्तरी सो गए और द्वार अपने आप बन्द हो गए यह पाखण्ड अन्ध विश्वास का प्रतीक है और कौतूहल जाहिर करने के उद्देश्य से यह कहानी झूठी गढ़ी है।

साभार
हिन्दुओं के वृत पर्व और त्यौहार
पृ.सं. 39 से 40 तक।
स० : एस.एल. सागर

क्या पाकिस्तान बनना चाहिए

I

इससे पूर्व जो कुछ कहा गया है, उसके बारे में कोई भी शंकालु, राष्ट्रवादी, रूढ़िवादी और प्राचीन विचारों का भारतीय यह प्रश्न अवश्य पूछेगा – '' क्या पाकिस्तान बनना चाहिए?'' इस प्रकार की प्रवृत्ति को कोई तुच्छ नहीं कह सकता है चूंकि पाकिस्तान की समस्या वास्तव में बड़ी गंभीर है, और यह बात मान लेनी चाहिए कि मुसलमानों तथा उनके पक्षधरों से उक्त प्रश्न के विषय में सवाल करना केवल प्रासंगिक एवं सही ही नहीं, महत्वपूर्ण भी है। इस बात का महत्व एवं आवश्यकता इस तथ्य में निहित है कि पाकिस्तान के पक्ष को क्षीण करने वाली सीमाएं इतनी अधिक है कि आसानी से उनकी अनदेखी नहीं की जा सकती । उक्त सीमाओं बारे में कोई भी एक वक्तव्य से ही यह समझ सकता है कि उनमें कितना दम हैं। यह बात उनकी आकृति से ही स्पष्ट झलकती है। ऐसा होते हुए पाकिस्तान के औचित्य को प्रमाणित करने का दायित्व मुसलमानों पर अधिक है। वस्तुतः पाकिस्तान का विषय, अथवा दूसरे शब्दों में भारत का विभाजन, इतना गंभीर मामला है कि मुसलमानों को केवल इसे प्रमाणित करने का दायित्व ही नहीं लेना होगा बल्कि उन्हें ऐसा साक्ष्य भी देना पड़ेगा जो अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के जमीर को संतुष्ट कर सके, जिससे वे अपना मामला जीत सकें। अब देखते हैं कि सीमाओं के परिप्रेक्ष्य में पाकिस्तान का मामला किस प्रकार ठहराता है?

II

क्या पाकिस्तान का बनना इसलिए आवश्यक है, क्योंकि मुस्लिम जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा कुछ निश्चित क्षेत्रों में केंन्द्रीत है जिन्हें सरलता से भारत से अलग किया जा सकता है? इसमें तो कोई दो मत नहीं है कि मुस्लिम जनसंख्या कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में केन्द्रीत है जिनका अलग किया जाना संभव है। परंतु इससे क्या? इस प्रश्न को समझने एवं इस पर विचार करने के लिए हमें इस मौलिक तथ्य को नहीं भूलना चाहिए कि प्रकृति ने भारत को एक एकल भौगोलिक इकाई के रूप में निर्मित किया हैं। भारतीय निश्चय ही लड़ रहे हैं और कोई भी यह भविष्यवाणी नहीं कर सकता कि वे कब लड़ना बंद करेंगे। परंतु इस तथ्य को स्वीकारने पर, यह भी प्रश्न उठता है कि यह किस बात का सूचक है? केवल यह कहना कि भारतीय विवादी होते हैं, इस तथ्य को नहीं मिटा सकता है कि भारत एक भौगोलिक इकाई है। इसकी एकता उतनी ही प्राचीन है, जितनी कि प्रकृति। भौगोलिक एकता के अंतर्गत अत्यंत प्राचीन काल में भी यहां सांस्कृतिक एकता रही है। इसी सांस्कृतिक एकता ने राजनीतिक और जातीय विभाजन की अवहेलना की है, और पिछले 150 वर्षों से सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, वैधानिक और प्रशासनिक संस्थाएं किसी भी मूल्य पर एक ही और एकसमान उद्गम स्थल से कार्य कर रही हैं। पाकिस्तान के किसी भी विवाद के संदर्भ में यह तथ्य आंखों से ओझल नहीं किया जा सकता कि मूलतः भारत की एकता आधारभूत है। यह तथ्य हृदयंगत करने योग्य है कि विभाजन के वस्तुतः दो मुद्दे हैं, जिनमें स्पष्टतः भेद किया जाना चाहिए। एक मामला वह है, जिसमें प्रारंभ से ही विभाजन की पूर्व स्थिति का दिग्दर्शन होता है, जिसके फलस्वरूप उन भागों का पुनः विभाजन होने की बात है, जो एक समय अलग थे और तदनंतर एक साथ मिल गए। यह मामला उससे भिन्न है, जिसमें प्रारंभिक मुद्दा सर्वदा एकता की स्थिति का है। परिणामस्वरूप इस मामले में विभाजन का अभिप्राय उस प्रदेश से जो किसी समय एक था अपना संबंध अलग–अलग भागों में विच्छेद कर लेना है। जहां प्रारंभिक मुद्दा प्रदेश की अखंडता से संबंधित नहीं है, अर्थात एकता होने के पूर्व जहां अलगाव था, वहां विभाजन–जिसका अभिप्राय पुनः अपनी पूर्वावस्था में वापसी है – संभवतः मानसिक आघात न पहुंचाए। परंतु भारत में प्रारंभिक मुद्दा एकता है। तब यह एकता क्यों छिन्न–भिन्न की जाए, केवल इसलिए कि कुछ मुसलमान असंतुष्ट है। इसके टुकड़े क्यों किए जाएं, जबकि ऐतिहासिक काल से यह एक है?

III

क्या पाकिस्तान इसलिए बनना चाहिए क्योंकि हिंदू और मुसलमानों के बीच सांप्रदायिक तनातनी है? इस बात से कोई नहीं कर सकता कि उनके बीच तनातनी है। प्रश्न केवल यह है कि क्या यह तनातनी इतनी प्रबल है कि वे एक देश में एक संविधानके अंतर्गत नहीं रह सकते? निश्चित रूप से एक साथ रहने की यह इच्छा 1937 तक उनमें नहीं थी। गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट –1935' के निर्माण के समय हिंदू–मुसलमानों ने एक देश में एक संविधान के अंतर्गत रहना पसंद किया था और उक्त एक्ट के पारित होने के पूर्व उस पर हुयी चर्चा में भी भाग लिया था। 1920–1935 के बीच सांप्रदायिक तनातनी की क्या स्थिति थी? जैसा कि पूर्वगामी पृष्ठों में रिकार्ड किया गया है, 1920 से 1935 तक का भारतीय इतिहास सांप्रदायिक संघर्ष की एक लम्बी कहानी है, जिसमें जन–धन की हानि शर्मनाक सीमा तक पहुंच गई थी। सांप्रदायिक स्थिति इतनी भयंकर कभी नहीं थी जितनी 15 वर्ष पूर्व भारत सरकार अधिनियम 1935 के पारित होने के पहले थी। फिर भी इस पारस्परिक तनाव के फलस्वरूप हिंदू और मुसलमानों में एक देश में एक संविधान के अंतर्गत रहने की इच्छा में कोई व्यवधान पैदा नहीं हुआ। फिर सांप्रदायिक तनाव के विषय मे अब इतनी अधिक चर्चा क्यों की जाती है?

क्या भारत ही ऐसा देश है, जहां सांप्रदायिक तनातनी है? कनाडा के विषय में क्या विचार है? कनाडा में अंग्रेजी और फ्रेंचों के संबंधो को लेकर मि. एलेक्जेंडर ब्रेडी का कथन विचारणीय है –

'' चार मूल प्रातों में से तीन–नोवा स्कोशिया, न्यू बुसविक और ओंटेरियों मे उसी एंग्लो–सैक्सन समुदाय और परंपराओं को मानने वाल लोगों की संख्या अधिक थी। प्रारंभ में अमरीकी क्रांति के फलस्वरूप इन कालोनियों को उन 50,000 युनाइटेड एंपायर राष्ट्रभक्तों ने बसाया, जिन्होंने उत्पीडन के कारण उत्तर की कठिन यात्रा की और निर्जन प्रदेश में अपने घर बसाए। अमरीकी क्रांति से पहले नोवा स्कोशिया में काफी स्काटलेंडवासी और अमरीकी उसे हुए थे और क्रांति के बाद सभी राष्ट्रभक्त कालोनियों में ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंड से आए आप्रवासी भी इन बस्तियों में बसाए गये।

क्यूबेक प्रांत इनसे काफी भिन्न था। 1867 मे फ्रेंच कनाडा अपने आप में एक सांस्कृतिक इकाई थी जिसे जाति, भाषा और धर्म के रोड़ों के कारण ब्रिटिश समुदाय से तिरस्कृत कर दिया गया था। ये लोग कैथोलिक विचारों से प्रभावित और दकियानूसी किस्म के थे, जिनका प्यूरिटिनिज्म और प्रोटेस्टेंट धर्मियों, विशेषकर कालविनिस्ट से कोई लगाव नहीं था। दोनों समुदायों के धार्मिक विश्वास में एकदम विपरीत थे। यदि धार्मिक कार्यो में हमेशा ऐसा न भी हो तो भी सामाजिक रूप में अंग्रेजी प्रोटेस्टेनिज्म का झुकाव हमेशा लोकतंत्र, यथार्थ और आधुनिकता की ओर रहा तथा फ्रांस के केथोलिज्म का झुकाव परंपरावादिता, आदर्शवादिता और अतीत के मनन की ओर रहा।

1867 में फ्रेंच कनाडा जैसा था, आज भी वह बहुत कुछ वैसा ही है। आज भी वह उन्हीं विश्वासों, रीति–रिवाजों और संस्थानों पर चल रहा है जिनकों अंग्रेजी प्रांतों में कोई नहीं मानता। उनके अपने विशिष्ट विचार और धारणाएं है और अपने ही महत्वपूर्ण मूल्य हैं। उदाहरण के लिए, विवाह और तलाक के बारे में उनका दृष्टिकोण न केवल शेष कनाडा, बल्कि एंग्लो–सैक्सन उत्तरी अमरीकावासियों के आम दृष्टिकोण के विपरीत है।

कनाडा के सबसे बड़े शहर मोंट्रिल में दोनों समुदायों के लोगों के बीच आपसी मेल–मिलाप का न होना देखा जा सकता है। लगभग 63 प्रतिशत आबादी फ्रेंच है और 24 प्रतिशत ब्रिटिश। यदि मेल–मिलाप की कहीं पर गुंजाइश है तो यहां पर वह काफी है, परंतु वास्तविकता यह है कि व्यवस्था और राजनीतिक कारणों को छोड़कर, जो उन्हें साथ रहने के लिए बाध्य करते हैं, वे एक दूसरे से विमुख रहते है। उनके अपने ही आवासीय क्षेत्र हैं, अपने–अपने वाणिज्यिक केंद्र है और उनमें से अंग्रेजों की जातीय पृथकता की भावना दृश्टव्य है।

मोंट्रियल के अंग्रेजी बोलने वाले निवासियों ने कुल मिलाकर अपने फ्रांसीसी भाषी नागरिकों की भाषा सीखने, उनकी परंपराओं को समझने, उत्सुकतापूर्वक उनका निरीक्षण करने तथा उनके गुण–दोषों के प्रति सहानुभति प्रकट करने के लिए कोई प्रयास नहीं किया। भाषायी रोड़ों ने दोनों समुदायों के लोगों के अलग–अलग रहने को और उकसाया। 1921 में हुई जनगणना से इस तथ्य का पता चला कि फ्रांसीसी मूल के लगभग 50 प्रतिशत कनाडावासी अंग्रेजी बोलने में असमर्थ हैं और ब्रिटिश मूल के 95 प्रतिशत लोग फ्रांसीसी भाषा नहीं बोल सकते। यहां तक कि मोंट्रियल में भी 70 प्रतिशत ब्रिटिश मूल के लोग फ्रेंच नहीं बोल सकते और 30 प्रतिशत फ्रेंच अंग्रेजी नहीं बोल सकते। एक आम भाषा के अभाव में दोनों राष्ट्रीयताओं के बीच जो खाई बनी हुई है वह उन्हें एक होने से रोकती है।

कांफेडरेशन का महत्व यह है कि इसने एक सरकारी तंत्र को जन्म दिया है, जिसके कारण फ्रांसीसियों को ब्रिटिशों के साथ सुखी, सहभागी और अपना विशिष्ट राष्ट्रीय जीवन कायम रखने तथा कनाडा की सुपर नागरिकता पाने और समग्र रूप से अपने समूह से ऊपर उस राष्ट्र के प्रति निष्ठावान रहने में सक्षम बनाया है।

'' कनाडा में जहां संघीय प्रणाली ने सफलतापूर्वक व्यापक राष्ट्रीयता का मार्ग खोला है, वहीं प्रयोजित सहयोग के कारण फ्रांसीसियों और अंग्रजों के बीच हिंसक मतभेद होने से कई बार अत्याधिक विवाद भी हुआ है और उच्चतर नागरिकता प्रायः एक छलावा सिद्ध हुई है।''

दक्षिण अफ्रीका का क्या हाल है? जिन लोगों को बोअर्स और अंग्रेजों के आपसी संबंधों के बारे में पता नहीं है, उन्हें श्री ई.एच. ब्रुक्स के इन शब्दों पर विचार करना चाहिए –

'' गोरी जातियों और दक्षिण–अफ्रीकी लोगों, दोनों के लिए दक्षिण अफ्रीकी राष्ट्रीयता कितनी आम हैं? निस्सदेंह यह अत्यंत वास्तविक और सघन है, परंतु आम तौर पर कहें तो यह एक ऐसी भावना है जो केवल गोरी जातियों तक सीमित है और जो अफ्रीकी भाषा के प्रति प्यार से काफी हद तक प्रभावित हुई है। प्रारंभ में यह हालैंड वासियों की मातृभाषा से प्रभावित हुई और बाद में थोड़ा–बहुत फ्रांसीसी प्रोटेस्टेंट और जर्मनों ने उसे आधुनिक रूप दिया; लेकिन सर्वाधिक रूप से वह भाषा समय के साथ चलकर प्रभावित हुई। अफ्रीकी राष्ट्रीयता केवल उन लोगों के लिए है जो दक्षिण अफ्रीकी है और उसमें उन लोगों, मुख्यतः अंगेजी भाषियों, के लिए कोई स्थान नहीं है जो अन्यथा दक्षिण अफ्रीका के प्रति पूर्णतः समर्पित है।

''क्या आज के समय में दक्षिण–अफ्रीका का कोई राष्ट्र है?

''दक्षिण–अफ्रीकी जीवन में कतिपय ऐसे तत्व विद्यमान हैं, जिनका उत्तर इस प्रश्न के प्रतिकूल जाता है।''

''अंग्रेजी बोलने वाले दक्षिण अफ्रीकी लोगों के बीच भी ऐसी अनेक धारणाएं विद्यमान है जो राष्ट्रीय एकता के हित में बाधक हैं। सभी जाति गुणों के बावजूद, उनमें

मूलभूत दोष कल्पना की कमी का है जो उन्हें स्वयं को दूसरे आदमी के स्थान पर देखने में कठिनाई पैदा करता है। भाषा के प्रश्न के अतिरिक्त, इसका स्पष्ट रूप अन्य किसी मुद्दे पर नहीं दिखाई देता। हाल तक बहुत ही कम अंग्रेजी भाषी दक्षिण अफ्रीकी लोगों ने व्यावसायिक काम के लिए (या सिविल सेवा के लिए) न्यूनाधिक रूप से बाध्य होकर अफ्रीकी भाषा का अध्ययन किया है और उनमें भी बहुत कम लोग बोलचाल में उसका उपयोग करते हैं। अनेक लोगों ने इसकी जानकारी और ज्ञान के बावजूद इसका खुला उल्लंघन किया है और बहुसंख्यक लोगों ने सहिष्णुता की कमी के कारण इसके प्रति नाराजगी जताई है या इसका मजाक उड़ाया हैं।''

इसी मुद्दे पर एक दूसरे साक्षी की बात पर भी गौर किया जा सकता है। वे हैं मैंनफ्रेड नाथन। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में बोअर्स और अंग्रेजों के बीच जो संबंध हैं, उसके बारे में कहा है –

''हो सकता है वे दोनों प्रोटेस्टेंट हों, यद्यपि आजकल इसका कोई महत्व नहीं रह गया है। धार्मिक मतभेद अब कोई ज्यादा माने नहीं रखता। वे एक–दूसरे के साथ खुले आम वाणिज्यिक लेन–देन करते है।''

'' इसके बावजूद, इस बात में सच्चाई नहीं है कि गोरे लोगों की आबादी के इन दो समुदायों के बीच पूर्ण रूप से उन्मुक्त सामाजिक व्यवहार होता है। कहा जाता है कि इसका एक कारण यह है कि बड़े शहरी केंद्रो में अंग्रेजी भाषी लोगों की आबादी अधिक है और शहरी लोगों को देहातों में रहने वालों के रहन–सहन के बारे में बहुत कम जानकारी होती है। लेकिन देहाती कस्बों में भी यद्यपि आमतौर पर काफी मैत्री होती है और बोअर्स लोग अपने यहां आनेवालो का काफी सम्मान करते हैं तथापि आवश्यक व्यवसाय अथवा वाणिज्यिक संबंधो को छोड़कर, दोनों समुदायों के बीच सामाजिक संबंध अधिक नहीं है और धर्मार्थ अथवा सार्वजनिक सामाजिक कामों में सहयोग की जो अपेक्षा की जाती है, वही इनमें प्रायः नहीं है।''

भारत ही एक ऐसा देश नहीं है जहां सांप्रदायिक संघर्ष होते है। कनाडा और दक्षिण अफ्रीका में भी यह स्थिति विद्यमान है। यदि कनाडा में सांप्रदायिक तनातनी के होते हुए फ्रेंच और अंग्रेज राजनीतिक इकाई के रूप में रह सकते है, दक्षिण अफ्रीका में यह सांप्रदायिक तनातनी अंग्रेजो और डचों को राजनीतिक इकाई में बांधे रहने में कोई बाधा नहीं पहुंचाती, और यदि इस सांप्रदायिक तनातनी के बावजूद स्विटजरलैंड में फ्रेंच और इटालियंस जर्मनों के साथ राजनीतिक इकाई के रूप में रह सकते है, तो भारत में हिंदू और मुस्लिम एक संविधान के अंतर्गत क्यों नहीं रह सकते?

IV

क्या पाकिस्तान इसलिए बनना चाहिए कि कांग्रेसी बहुमत में अब मुसलमानों का विश्वास नहीं रहा? मुसलमानों द्वारा इसके अनेक कारण बताए गए हैं, जिनमें हिंदुओं द्वारा पैदा किए गए आतंक तथा उन्हें परेशान करने के अनेक उदाहरण दिए है और कांग्रेसी मंत्रियों ने अपने दो वर्ष तीन महीने के शासनकाल में जिनकी अपेक्षा की है। दुर्भाग्यवश जिन्ना ने इस उत्पीड़क घटनाओं के संदर्भ में जांच–पड़ताल करने के लिए शाही कमीशन बैठाने की अपनी मांग पर आग्रह नहीं किया। अगर उन्होंने आग्रह किया होता, तो यह मालूम हो जाता कि उन शिकायतों में कहां तक सच्चाई थी। मुस्लिम लीग की समितियों द्वारा उल्लिखित रिपोर्टो में दिए गए उदाहरणों का अध्ययन करने से पाक पर यह प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता कि कुछ सच्चाई होने के बावजूद उन शिकायतों में काफी अतिशयोक्ति है। कांग्रेसी मंत्रियों ने इन दोषों को अस्वीकार करते हुए अपने वक्तव्य प्रकाशित किए हैं। हो सकता है कांग्रेस द्वारा अपने दो वर्ष तीन महीने के शासन में राजनीतिज्ञता का प्रदर्शन और अल्पसंख्यकों में विश्वास की भावना उत्पन्न न की गई हो, बल्कि उन्हें दबाया गया हो, परंतु क्या यह सब भारत–विभाजन के लिए एक उपयुक्त कारण हो सकता है? क्या यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि वे मतदाता, जिन्होंने पिछली बार कांग्रेस का समर्थन किया था, अब अधिक बुद्धिमत्तापूर्वक उसका समर्थन करेंगे? अथवा क्या यह संभव नहीं कि यदि कांग्रेस पुनः शासनारूढ़ होती है और अपनी गलतियों से लाभान्वित होती है, तो वह अपनी शरारतपूर्ण नीति का परित्याग करके अपने गत चरित्र द्वारा उत्पन्न शंका और भय के वातावरण को दूर कर देगी?

V

क्या पाकिस्तान इसलिए बनना चाहिए कि मुसलमान एक राष्ट्र हैं? दुर्भाग्श से, जिन्ना ऐसे समय में पाकिस्तान के उपासक और मुस्लिम राष्ट्रीयता के अभिनेता हुए हैं, जब सारा संसार राष्ट्रीयता की बुराई के विरूद्ध चिल्ला रहा है और किसी भी तरह के अंतर्राष्ट्रीय संगठन में शरण लेना चाहता है।

जिन्ना मुस्लिम राष्ट्रीयता के अपने इस नए विश्वास से इतने आत्मविभोर हैं कि वे इस बात को समझने के लिए तैयार नहीं हैं कि एक ऐसे समाज के बीच जिसके कुछ हिस्से अलग हो गए हों और एक समाज जिसके कुछ अंग शिथिल पड़ गए हों, कोई भेद है और कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति जिसकी अपेक्षा नहीं कर सकता। जब एक समाज छिन्न–भिन्न हो रहा हो और दो राष्ट्र का सिद्धांत समाज और देश के विभाजन का स्पष्ट सूचक हो, तो कार्लाइल के 'ऑरगेनिक फिलामेंट्स' अर्थात् वे प्रबल शक्तियां जो उन भागों को एक सूत्र में बांधने के लिए सक्षम हों जो छिन्न–भिन्न हो चुकी हैं – उसका कोई अस्तित्व नहीं है ऐसे मामलों में विघटन की भावना खेदजनक ही समझी जा सकती है। यह रोकी नहीं जा सकती। परन्तु जहां उक्त शक्तियों का अस्तित्व है, उनके ऊपर ध्यान न देना और मुसलमानों की भांति समाज तथा देश को जान–बूझकर विभाजित करने पर बल देना, एक घोर अपराध है। मुसलमान एक भिन्न राष्ट्र इसलिए नहीं चाहते कि वे भिन्न रहे है बल्कि इसलिए कि यह उनकी कामना है। मुसलमानों में बहुत कुछ है जिसके फलस्वरूप, यदि वे चाहें तो अपने को एक राष्ट्र के रूप मे ढाल सकते है, परंतु क्या ऐसी कोई स्थिति नहीं है जो हिंदू और मुसलमानों में सघन रूप से पाई जाती हो और जिसके फलस्वरूप यदि वह विकसित की जाए तो वह उन दोनों को एक मानव समाज में ढाल सकें? इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि उनके अनेक ढंग, तौर–तरीके, धार्मिक तथा सामाजिक रीति–रिवाज समान है। इस बात से भी कोई इन्कार नहीं कर सकता कि कुछ रीति–रिवाज, संस्कार तथा आचरण हैं, जो धर्म पर आधारित हैं और जिनके फलस्वरूप हिंदू और मुसलमान आपस में दो भागों में विभक्त हैं। प्रश्न यह है कि उनमें से किस पर अधिक बल दिया जाए। यदि उन बातों पर ध्यान दिया जाता है जो सामान्य रूप से भिन्न है, तो ऐसी स्थिति में निःसंदेह दो राष्ट्रों का सवाल सही है। यही धारणा जिन्ना की है। भारतीय समाज एकमात्र ऐसा समाज है जो कभी एक नहीं हो सकता। माना कि वे एक राष्ट्र नहीं है बल्कि एक जनसमूह है, तो इससे क्या? यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि मिले हुए व्यक्तियों के रूप में राष्ट्रों के उदय होने से पूर्व वहां मात्र जनसमूह था। इसमें कोई शर्म की बात नही है, यदि भारतीय एक जनसमूह के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। इस निराशा का कोई कारण भी समझ में नहीं आता कि भारतीय जनसमूह यदि चाहे तो एक राष्ट्र नहीं हो सकता। डिजराइली के कथनानुसार राष्ट्र एक कला तथा काल के कार्य का प्रतिफल है। यदि हिंदू और मुसलमान उन बातों पर स्वीकृति प्रदान करने पर बल देते है जो उन्हें एक सूत्र में बांधती हैं, और उन बातों को भूल जाते है जिनके परिणामस्वरूप वे विभक्त होते है तो फिर ऐसा कोई कारण नहीं है कि आगे चलकर उनका एक राष्ट्र के रूप में उदय न हो। हो सकता है कि उनकी राष्ट्रीयता इतनी एकताबद्ध न हो जितनी फ्रांस और जर्मनी की है, परंतु वे मन की एकसमान स्थिति सरलतापूर्वक उत्पन्न कर सकते है। ऐसे सभी समान मुद्दों के मामलों में जिनका आविर्भाव राष्ट्रीयता की आत्मा के फलस्वरूप हुआ है, क्या यह उचित है कि मुस्लिम लीग भेदभावों पर तो बल दे परन्तु एकता में बांधनेवाली शक्तियों को भुला दे। यह बात विस्मृत नहीं होनी चाहिए कि यदि दो राष्ट्र अस्तित्व में आते हैं तो इसलिए नहीं कि यह उनकी नियति थी, अपितु इसलिए कि वह यह सुविचारित मंसूबा है।

जैसा कि मैं पहले ही बता चुका हूँ, भारत के मुसलमान अब भी कानूनन और यथार्थ में एक राष्ट्र नहीं हैं, और केवल कहा ही जा सकता है कि उनमें राष्ट्र–निर्माण के आवश्यक तत्व मौजूद हैं। परंतु यह मानते हुए कि भारत के मुसलमान एक राष्ट्र हैं, क्या भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ दो राष्ट्रों का अभ्युदय होने वाला है? कनाडा के विषय में क्या विचार है? प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि कनाडा में अंग्रेज और फ्रेंच दो राष्ट्र हैं। क्या दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेज और डच दो राष्ट्र नहीं हैं? कौन नहीं जानता कि स्विटजरलैंड में जर्मनी, फ्रेंच और इटालियन, ये तीन राष्ट्र हैं। क्या कनाडां में फ्रेंचों ने विभाजन की मांग की, क्योंकि वे एक पृथक राष्ट्र हैं? क्या अंग्रेजों ने अफ्रीका के विभाजन का दावा किया, क्योंकि बोसनिया से वे एक भिन्न और पृथक राष्ट्र हैं? क्या किसी ने कभी यह सुना है कि जर्मनी, फ्रेंच और इटालियंस ने स्विटजरलैंड से अलग होने के लिए कोई आंदोलन किया, क्योंकि वे भिन्न–भिन्न राष्ट्र हैं? क्या जर्मंस, फ्रेंच और इटलीवासियों ने कभी यह अनुभव किया है कि यदि वे एक देश में एक संविधान के अंतर्गत एक नागरिक की तरह रहते हैं तो उनकी अपनी निजी संस्कृतियों का लोप हो जाएगा। इसके बावजूद, उक्त सभी विभिन्न राष्ट्रों ने अपनी राष्ट्रीयता तथा संस्कृति की क्षीणता से डरे बिना एक साथ एक संविधान के तहत रहने में संतोष प्रकट किया। कनाडा में अंग्रेजों के साथ रहकर न तो फ्रांसीसी फ्रांसीसीयत से रिक्त हुए और न दक्षिण अफ्रीका में बोर्स के साथ रहकर अंग्रेजों की अंग्रेजियत समाप्त हुई। जर्मंस, फ्रेंच तथा इटालियंस एक देश और एक संविधान के साथ समान नाता जोड़ते हुए अभिन्न राष्ट्र रहे। स्विटजरलैंड का मामला ध्यान देने योग्य है। यह उन देशों से घिरा हुआ है, जिनकी राष्ट्रीयताएं एवं राष्ट्रीयताओं का धार्मिक तथा जातीय संबंध बहुत निकट से स्विटजरलैंड की राष्ट्रीयताओं से संबद्ध है। उक्त सादृश्यता के होते हुए भी स्विटजरलैंड के निवासी सर्वप्रथम स्विस हैं, तत्पश्चात जर्मंस, इटालियंस और फ्रेंच हैं।

कनाडा में फ्रेंच दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेजों और स्विटजरलैंड में फ्रेंच और इटालियंस के उदाहरण के बाद प्रश्न यह उठता है कि भारत में आखिर ऐसा क्यों नहीं होता? यह मानते हुए कि हिंदू और मुसलमान दो राष्ट्रों में विभाजित हैं, वे एक देश में एक संविधान के अंतर्गत क्यों नहीं रह सकते? दो राष्ट्र–सिद्धांत के आविर्भाव के फलस्वरूप भारत के विभाजन की आवश्यकता क्या है? हिंदुओं के साथ रहने पर मुसलमान अपनी राष्ट्रीयता तथा संस्कृति के क्षीण हो जाने को लेकर इतने भयभीत क्यों हैं? यदि मुसलमान विभाजन का आग्रह करते हैं, तो कुटिल व्यक्ति संभवतः यह निष्कर्ष निकालें कि हिंदू और मुसलमानों के बीच इतनी अधिक सामान्यता है कि मुस्लिम नेतृत्व में इतना भय व्याप्त है कि वे यह सोचने लगें कि जब तक विभाजन नहीं होता, मुसलमानों में जो थोड़ी–बहुत अलग इस्लामी संस्कृति बची हुई है, अंततः वह भी हिंदुओं के साथ सामाजिक संपर्क होने के कारण समाप्त हो जाएगी और, फलस्वरूप दो राष्ट्रों के बावजूद भारत में एक राष्ट्र ही बचा रहेगा। यदि मुस्लिम राष्ट्रीयता इतनी ही क्षीण है तो विभाजन का विचार बनावटी है और पाकिस्तान का मामला अपना आधार खो बैठता है।

VI

क्या पाकिस्तान इसलिए बनना चाहिए कि इसके अभाव में स्वराज एक हिंदू राज होगा? मुस्लिम जनता उक्त प्रलाप में इतनी आसानी से बह जाती है कि इसमें जो निहित भ्रांतियां हैं, उनका पर्दाफाश कर देना परमावश्यक है।

सर्वप्रथम, हिंदू राज के लिए मुस्लिम आपत्ति क्या शुद्ध अंतःकरणीय है, अथवा एक राजनीतिक विरोध है? यदि यह एक शुद्ध अंतःकरणीय है तो यही कहा जा सकता है कि यह बड़ा विचित्र अंतःकरण है? वास्तव में ऐसे करोड़ों मुसलमान भारत में हैं जो बिना किसी प्रतिबंध तथा नियंत्रण के हिंदू रियासतों में रहते हैं। वहाँ मुस्लिम लीग अथवा मुसलमानों द्वारा कोई आपत्ति नहीं उठाई गई है। मुसलमानों ने एक समय ब्रिटिश राज के विरूद्ध शुद्ध अंतःकरण से आपत्ति उठाई थी। आज उन्हें मात्र आपत्ति ही नहीं है, अपितु वे उसके प्रबल समर्थक हैं। ब्रिटिश राज के प्रति आपत्ति न होना अथवा हिंदू रियासतों के हिंदू राजाओं के राज के प्रति आपत्ति न होना, किन्तु अंग्रेजों से भारत के लिए स्वराज लेने पर इस आधार पर आपत्ति होना कि ऐसा भारत हिंदू राज होगा, मानो उसमें कोई अंकुश नहीं होंगे, ऐसी मनोवृत्ति है जिसका तर्क समझना बहुत कठिन है।

हिंदू राज के विषय में राजनीतिक आपत्तियां अनेक आधारों पर निर्भर करती हैं। पहला आधार यह है कि हिंदू समाज एक लोकतंत्री समाज नहीं है। यह सच नहीं है। चाहे यह पूछना सही न हो कि मुसलमानों ने हिंदू समाज–सुधार के लिए चलाए गए विभिन्न आंदोलनों में कभी भाग लिया है, लेकिन यह पूछना सही होगा कि क्या केवल मुसलमान ही उन बुराइयों से उत्पीड़ित हुए हैं जो हिंदू समाज के अप्रजातांत्रिक होने के फलस्वरूप उत्पन्न हुई हैं? क्या करोड़ो शुद्र और गैर–ब्राह्मण करोड़ों अस्पृश्य हिंदू समाज के इस अलोकतांत्रिक चरित्र के फलस्वरूप सर्वाधिक उत्पीड़ित नहीं हुए हैं? शिक्षा, लोक सेवा और राजनीतिक सुधारों के फलस्वरूप उस हिंदू शासक जाति को, जो हिंदुओं की उच्च जातियों से निर्मित हुई है और जो समस्त हिंदू जनसंख्या के दस प्रतिशत से अधिक नहीं है, छोड़कर अन्य किसको अधिक लाभ हुआ है? क्या उक्त हिंदू शासक जाति ने, जो हिंदू राजनीति पर अपना नियंत्रण रखती है, अस्पृश्य और शूद्रों के निहित स्वार्थों की सुरक्षा की अपेक्षा मुसलमानों के निहित स्वार्थों की सुरक्षा पर अधिक ध्यान नहीं दिया है? क्या श्री गांधी अस्पृश्यों का कोई राजनीतिक लाभ देने का विरोध करते हैं पर क्या मुसलमानों के पक्ष में वे एक चेक पर हस्ताक्षर करने के लिए तत्पर नहीं हैं? वास्तव में हिंदू शासक जाति अस्पृश्यों तथा शूद्रों के साथ शासन में भाग लेने की अपेक्षा मुसलमानों के साथ शासन में भाग लेने को अधिक तत्पर दिखाई देती हैं। मुसलमानों के पास निश्चय ही हिंदू समाज के इस अलोकतंत्रात्मक स्वरूप के प्रति शिकायत करने का किंचित भी आधार नहीं है।

दूसरा आधार, जिस पर हिंदू राज के प्रति मुसलमानों की आपत्ति आधारित है, यह है कि हिंदू एक बहुसंख्यक जाति है और मुलसमान अल्पसंख्यक जाति है। यह सत्य है। परंतु क्या भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है जहाँ इस प्रकार की स्थिति है? भारतवर्ष में इस स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन हमें कनाडा, दक्षिण अफ्रीका और स्विटजरलैंड की स्थिति से करना चाहिए। सर्वप्रथम जनसंख्या–वितरण को लिया जाए। कनाडा की कुल जनसंख्या 10, 376, 786 में से मात्र 2,927,990 फ्रेंच हैं। दक्षिण अफ्रीका में डचों की जनसंख्या 1,120,770 है और अंग्रेजों की केवल 783,071 है। स्विटजरलैंड की कुल जनसंख्या 4,066,400 में 2,924,313 जर्मन, 831,097 फ्रेंच और 242,034 इटालियंस हैं।

यह दर्शाता है कि छोटी राष्ट्रीयताओं को बड़ी जाति के राज में रहने पर कोई डर नहीं है। लेकिन ऐसी धारणा का उनमें क्यों अभाव है और इसका क्या कारण है? क्या यह इसलिए है क्योंकि विधान सभा तथा कार्यपालिका में अपनी प्रभुसत्ता स्थापित करने की वहाँ कोई संभावना नहीं है? बात इसके विपरीत है। दुर्भाग्यवश, ऐसे कोई भी आंकड़े हमारे पास उपलब्ध नहीं हैं, जिनके द्वारा हम स्विटजरलैंड कनाडा और दक्षिण अफ्रीका की विभिन्न एवं अल्प राष्ट्रीयताओं के प्रतिनिधियों की वास्तविक संख्या का अध्ययन कर पाते। भारत की भांति वहाँ जातिगत स्थानों के बारे में आरक्षण की भावना नहीं है। प्रत्येक जाति को आम चुनाव में यह अधिकार है कि वह जितने चाहे, उतने स्थानों के लिए अपने उम्मीदवार खड़े कर सकती है। परंतु उन स्थानों की सम्भाव्य संख्या की गणना करना आसान है, जिन्हें प्रत्येक राष्ट्र विधान सभा के कुल स्थानों और अपनी जनसंख्या के अनुपात के आधार पर प्राप्त कर सकता है। इस आधार पर आगे चलते हुए, हमें क्या देखने को मिलता है? स्विटजरलैंड के निचले सदन में कुल एक सौ सत्तासी प्रतिनिधि हैं। उनमें से जर्मन जनसंख्या के 138 स्थानों पर जीतने की संभावना होती है, फ्रेंच की 42 पर और इटालियंस की केवल 7 स्थानों पर। दक्षिण अफ्रीका में कुल 153 स्थानों में से अंग्रेज 62 और डच 94 स्थान जीत सकते हैं। कनाडा में कुल 245 स्थान हैं। उनमें से 65 स्थानों पर फ्रेंच जीत सकते हैं। इस आधार पर यह बिलकुल स्पष्ट है कि उक्त समस्त देशों में यह संभावना है कि बड़े राष्ट्र छोटे राष्ट्रों पर अपनी प्रभुसत्ता स्थापित कर सकते हैं। वास्तव में यहाँ तक कहा जा सकता है कि मात्र कानून और आकार के संदर्भ में फ्रेंच लोग कनाडा में ब्रिटिश राज्य के अंतर्गत, दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेज डच राज्य के अंतर्गत और स्विटजरलैंड में इटालियंस और फ्रेंच जर्मन राज्य के अंतर्गत रह रहे हैं। परंतु वास्तविक स्थिति क्या है? क्या कनाडा में फ्रांस निवासियों ने यह चीख–पुकार की है कि वे ब्रिटिश राज्य के अंतर्गत नहीं रहना चाहते? क्या दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेजों द्वारा यह प्रलाप किया गया है कि व डच राज्य के अंतर्गत नहीं रहना चाहते? क्या स्विटजरलैंड में फ्रेंच और इटालियंस ने कोई आपत्ति उठाई है कि वे जर्मन राज्य के अंतर्गत नहीं रह सकते? तब फिर मुसलमान ही क्यों वह आवाज उठाते हैं कि वे हिंदू राज्य के अंतर्गत नहीं रहना चाहते?

क्या यह बात कभी कही गई है कि हिंदू राज्य एक स्पष्ट, भेदभावरहित सांप्रदायिक बहुमत का शासन होगा? क्या हिंदू बहुमत के उत्पीड़न की संभावना के विरूद्ध मुसलमानों को सुरक्षा नहीं दी जाएगी? कनाडा में फ्रेंचों के हितों को, दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेजो और स्विटजरलैंड में फ्रेंच और इटालियन्स के हितों को जो सुरक्षा प्रदान की गई है, उनकी अपेक्षा भारत में मुसलमानों के हितों को मिली सुरक्षा क्या अधिक और बेहतर नहीं है? हितों की सुरक्षा के किसी एक विषय को ले लीजिए। क्या विधानसभा में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व उनकी जनसंख्या के अनुपात से अधिक नहीं है? क्या कनाडा, दक्षिण अफ्रीका और स्विटजरलैंड में जातियों की जनसंख्या के अनुपात से अधिक प्रतिनिधित्व उन्हें दिया गया है, और क्या जनसंख्या के अनुपात से अधिक प्रतिनिधित्व का मुसलमानों पर कोई प्रभाव पड़ा है? क्या यह विधान सभा में हिंदुओं के बहुमत को नहीं घटाता है? इसमें कितनी कमी आई है? अपने को ब्रिटिश भारत तक ही सीमित करते हुए और केवल उसी प्रतिनिधित्व का लेखा–जोखा लेते हुए, जो कि निर्वाचन क्षेत्रों को प्रदान किया गया है, स्थिति क्या है? भारत सरकार के 1935 ऐक्ट के अंतर्गत केंद्रीय विधान सभा के निचले सदन में कुल 187 स्थानों में हिंदुओं की संख्या 105 और मुसलमानों की 82 है। उक्त आंकड़ों का अध्ययन करने के उपरांत कोई भी यह पूछ सकता है कि हिंदू राज से भय कहाँ हैं?

पर अगर वास्तव में हिंदू राज बन जाता है तो निस्संदेह इस देश के लिए एक भारी खतरा उत्पन्न हो जाएगा। हिंदू कुछ ही कहें, पर हिंदुत्व स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे के लिए एक खतरा है। इस आधार पर, प्रजातंत्र के लिए यह अनुपयुक्त है। हिंदू राज को हर कीमत पर रोका जाना चाहिए। परंतु क्या इसका उपचार पाकिस्तान का बन जाना ही है? किसी देश में बसने वाली विभिन्न जातियों के तुलनात्मक शक्ति–संतुलन के अभाव में सांप्रदायिक राज का निर्माण होता है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, संतुलन का यह अभाव भारत में इतना अधिक नहीं पाया जाता जितना कनाडा, दक्षिण अफ्रीका और स्विटजरलैंड में है। तो भी कनाडा में कोई जर्मन राज नहीं है। पूछा जा सकता है कि किस प्रकार अपने–अपने देश में फ्रेंच, जर्मन, अंग्रेज और इटालियंस बहुतसंख्यक जाति के राज को रोकने में सफल हुए? निश्चय ही विभाजन द्वारा नहीं। उनकी क्या पद्धति है? उनकी पद्धति सांप्रदायिक दलों पर प्रतिबंध लगा देने की है। कोई भी जाति कनाडा, दक्षिण अफ्रीका तथा स्विटजरलैंड में पृथक सांप्रदायिक दल बनाने के लिए कभी नहीं सोचती। ध्यान देने योग्य बात यह है कि अल्पसंख्यक राष्ट्रीयता सांप्रदायिक पार्टी की रचना के विरोध में अग्रसर होती है, क्योंकि वह जानती है कि यदि उसने किसी सांप्रदायिक दल का निर्माण किया, तो बहुसंख्यक जाति बड़ी आसानी से अपना सांप्रदायिक राज स्थापित कर लेगी। लेकिन आत्मरक्षा की यह एक हेय प्रणाली है। इसलिए अल्पसंख्यक राष्ट्रीयताएं इससे पूरी तरह परिचित हैं कि वे किस प्रकार हमारे किले पर छा जाएंगे, अतः उन्होंने सांप्रदायिक राजनीतिक दलों के निर्माण का विरोध किया है।

पर क्या मुसलमानों द्वारा हिंदू राज को टालने की बात सोची गई? क्या उन्होंने कभी यह सोचा कि मुस्लिम लीग की चालू नीति कितनी घातक एवं हानिकारक है? मुसलमान हिंदू महासभा के हिन्दू राज के नारे के विरूद्ध गरज रहे हैं। परंतु इसका उत्तरदायित्व किस पर है? यह हिंदू महासभा और हिंदू राज की बदले की भावना है, जिससे मुसलमानों ने मुस्लिम लीग को जन्म दिया। यह क्रिया और प्रतिक्रिया है, जो एक दूसरे को जन्म देती है। हिंदू राज के भूत को दफनाने के लिए विभाजन को छोड़कर केवल मुस्लिम लीग का भंग हो जाना तथा हिंदू–मुस्लिम जातियों की संयुक्त पार्टी का बन जाना ही एकमात्र प्रभावी मार्ग है। जब तक संवैधानिक सुरक्षाओं के सवाल पर समझौता नहीं होता, तब तक वास्तव में यह संभव नहीं है कि मुस्लिम तथा अन्य अल्पसंख्यक पार्टियां कांग्रेस तथा हिंदू महासभा में भाग लें। परंतु यह निश्चित होना है, और आशा भी है कि इस समझौते के फलस्वरूप मुस्लिम तथा अन्य अल्पसंख्यक जातियां मनचाहे संरक्षण उपलब्ध करा सकेंगी। एक बार इस लक्ष्य की प्राप्ति हो जाने पर पार्टी को पुनः एक सीधे मार्ग पर आ जाने में कोई बाधा उपस्थित नहीं हो सकती। इसके लिए हम चाहते हैं कि कांग्रेस और महासभा भंग हो जाए और हिंदू तथा मुसलमान मिल–जुलकर राजनीतिक पार्टियों का निर्माण कर लें, जिनका आधार आर्थिक जीर्णोद्धार तथा स्वीकृत सामाजिक कार्यक्रम हो तथा जिसके फलस्वरूप हिंदू राज अथवा मुस्लिम राज का खतरा टल सके। भारत में हिंदू–मुसलमानों की संयुक्त पार्टी की रचना कठिन नहीं है। हिंदू समाज में ऐसी बहुत–सी उपजातियां हैं जिनकी आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक आवश्यकताए वही हैं जो बहुसंख्यक मुस्लिम जातियों की हैं। अतः वे उन उच्च जाति के हिंदुओं की अपेक्षा, जिन्होंने शताब्दियों से आम मानव अधिकारों से उन्हें वंचित कर दिया है, अपने व अपने समाज के हितों की उपलब्धियों के लिए मुसलमानों से मिलने के लिए शीघ्र तैयार हो जाएंगी। इस प्रकार के मार्ग का अवलंबन एक साहसपूर्ण कार्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इस मार्ग का पहले से ही अनुकरण किया गया है। क्या यह तथ्य नहीं है कि मांटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों के अंतर्गत अधिकांश प्रांतों में मुसलमान, गैर ब्राह्मण तथा पिछड़ी जातियां एकता के सूत्र में बंधी और 1920 से 1937 तक एक टीम की तरह उन सुधारों पर अमल किया गया? इसमें हिंदू और मुसलमानों के बीच सांप्रदायिक एकता प्राप्त करने की अत्यधिक उपयोगी पद्धति निहित है और इसके परिणामस्वरूप हिंदू राज का खतरा खत्म हो जाता है। श्री जिन्ना इस रूपरेखा का आसानी से सहारा ले सकते थे और उनके लिए इसमें सफलता प्राप्त करने में कोई कठिनाई भी नहीं थी। वास्वत में श्री जिन्ना ही एक ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्हें इस ओर सफलता प्राप्त करने के समस्त अवसर प्राप्त हैं, यदि

उनके द्वारा एक संयुक्त, गैर–सांप्रदायिक पार्टी के निर्माण का प्रयत्न किया जाए। उनमें संगठन करने की योग्यता है, वे राष्ट्रीयता के लिए प्रसिद्ध हैं। अनेक हिंदू भी जिनका कांग्रेस से मतभेद है, उनसे सहयोग करने को तत्पर हो जाते, यदि उन्होंने समान सोच वाले हिंदू–मुसलमानों की एक संयुक्त पार्टी बनाने का आह्वान किया होता। सोचिए कि 1937 में श्री जिन्ना ने क्या किया था? श्री जिन्ना ने मुस्लिम राजनीति में प्रवेश किया और आश्चर्यजनक ढंग से मुस्लिम लीग को जो मर रही थी और क्षीण हो रही थी पुनर्जीवित किया, तथा कुछ ही वर्षों पूर्व जिसका दाह–संस्कार देखकर वह प्रसन्न होते। इस तरह सांप्रदायिक राजनीतिक पार्टी का प्रारंभ कितना ही खेदजनक सही, परंतु उसका जो सुखद स्वरूप था कि श्री जिन्ना का नेतृत्व। प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव करता था कि श्री जिन्ना के नेतृत्व में लीग कभी भी सांप्रदायिक पार्टी नहीं हो सकेगी। अपने इस नए कार्य के पहले दो वर्षों में लीग ने जो प्रस्ताव पारित किए हैं, उनसे यह पता चलता है कि हिंदुओं और मुसलमानों का एक संयुक्त राजनीतिक दल विकसित हो सकेगा। अक्टूबर 1937 में लखनऊ में संपन्न मुस्लिम लीग के वार्षिक अधिवेशन पर कुल 15 प्रस्ताव पारित हुए। उनमें से निम्नलिखित दो प्रस्ताव इस संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं –

प्रस्ताव संख्या 7 :

''अखिल भारतीय मुस्लिम लीग का यह अधिवेशन भारत सरकार अधिनियम 1935 की भावना और अर्थ की तीव्र भर्त्सना करते हुए कांग्रेस द्वारा कतिपय प्रांतों में मंत्रिमंडलों के निर्माण के विरूद्ध खेद प्रकट करता है, अपना विरोध प्रकट करता है तथा राज्यपालों की निंदा करता है, क्योंकि वे अपने उन विशिष्ट अधिकारों को प्रयोग में लाने में असफल रहे हैं, जो उन्हें मुस्लिम तथा अन्य महत्वपूर्ण अल्पसंख्यकों के हितों की सुरक्षा के लिए उपलब्ध थे।''

प्रस्ताव संख्या 8 :

''यह निर्णय लिया जाता है कि अखिल भारतीय मुस्लिम लीग का ध्येय स्वतंत्र प्रजातांत्रिक राज्यों के एक संघ के रूप में पूर्ण स्वतंत्रता स्थापित करना है, जिसमें मुसलमानों तथा अन्य अल्पसंख्यकों के हितों और अधिकारों की सुरक्षा संविधान में प्रभावपूर्ण ढंग से हो सके।''

दिसम्बर 1938 में संपन्न मुस्लिम लीग के दूसरे वार्षिक अधिवेशन में इसी प्रकार के अनेक प्रस्ताव पारित किए गए। उनमें निम्न प्रस्ताव संख्या 10 विचारणीय है–

''अखिल भारतीय मुस्लिम लीग अपना यह दृष्टिकोण दोहराती है कि संघ की परियोजना, जो भारत सरकार अधिनियम, 1935 में सन्निहित है, स्वीकार करने योग्य नहीं है, परंतु जो आगे उन्नति हुई है या समय–समय पर हो सकती है, एतदर्थ लीग अपने अध्यक्ष को अधिकार प्रदान करती है कि वे ऐसा मार्ग अपनाएं, जो आवश्यक हो, जिससे उन उचित विकल्पों की संभावनाओं की खोज की जा सके, जिनके फलस्वरूप मुसलमानों और अन्य अल्पसंख्यकों के हितों की सुरक्षा हो सके।''

उक्त प्रस्तावों द्वारा श्री जिन्ना ने यह दिखाया कि वह मुस्लिम और गैर–मुस्लिम अल्पसंख्यकों के बीच एक सामान्य मंच के पक्ष में हैं। दुर्भाग्यवश निष्पक्षता तथा राजनीतिज्ञता, जो उक्त प्रस्तावों में सन्निहित थी, अधिक समय तक नहीं रह सकी। 1939 में श्री जिन्ना ने एक छलांग लगाई और पाकिस्तान के पक्ष में वह शरारतपूर्ण प्रस्ताव पारित करते हुए मुसलमानों को पृथक करने की खतरनाक एवं विनाशकारी अलगाववादी नीति की रूपरेखा तैयार की। इस अलगाव का क्या कारण है? कोई कारण नहीं, केवल विचारधारा में परिवर्तन कि मुसलमान एक राष्ट्र हैं, एक जाति नहीं। किसी व्यक्ति को इस सवाल पर झगड़ना नहीं चाहिए कि मुसलमान एक राष्ट्र हैं अथवा जाति। परंतु यह बात समझना बहुत कठिन है कि किस प्रकार यह तथ्य कि मुसलमान एक राष्ट्र हैं, राजनीतिक अलगाव की एक सुरक्षित और सार्थक नीति का द्योतक है। दुर्भाग्यवश मुसलमान इस बात का अनुभव नहीं करते कि उक्त नीति के फलस्वरूप श्री जिन्ना ने उन लोगों का कितना अहित किया है, परंतु मुसलमान यह तो सोच ही सकते हैं कि मुस्लिम लीग को मुसलमानों का एकमात्र संगठन बनाकर श्री जिन्ना ने क्या पाया? हो सकता है उक्त प्रक्रिया के फलस्वरूप उनके सामने किसी अन्य व्यक्ति के नेतृत्व प्राप्त करने की संभावना न रही हो, क्योंकि मुस्लिम शिविर में उन्हें स्वयं सर्वप्रथम स्थान प्राप्त होने का पूर्ण विश्वास रहा है। परंतु लीग हिंदू राज्य से मुसलमानों के अलगाव की योजना द्वारा किस प्रकार अपने को बचा सकती है? जिन प्रांतों में मुसलमान अल्पसंख्यक हैं, क्या पाकिस्तान वहाँ हिंदू राज्य के निर्माण की संभावना को रद्द कर सकता है? स्पष्टतः वह ऐसा नहीं कर सकता। अगर पाकिस्तान बना तो अल्पसंख्यक मुस्लिम प्रांतों में यह बात अवश्य होगी। अब संपूर्ण भारत पर दृष्टिपात कीजिए। क्या पाकिस्तान उन मुस्लिम अल्पसंख्यकों के बल पर, जो हिंदुस्तान में बचे रहेंगे, केंद्र में हिंदू राज स्थापित करने में रूकावट डाल सकता है? स्पष्ट है कि ऐसा नहीं हो सकता। तब पाकिस्तान का क्या औचित्य रहा? क्या वह उन बहुसंख्यक मुस्लिम प्रांतों में, जहाँ पर कभी भी हिंदू राज नहीं बन सकता, हिंदू राज की स्थापना को रोक सकता है? दसूरे शब्दों में कहा जा सकता है कि पाकिस्तान मुलसमानों के लिए वहाँ अनावश्यक है जहाँ वे बहुसंख्यक हैं, क्योंकि वह हिंदू राज की स्थापना का कोई भय नहीं है। वह स्थिति मुसलमानों के लिए निरर्थक होने की अपेक्षा और भी बुरी है, जहाँ मुसलमान अल्पसंख्यक हैं, क्योंकि पाकिस्तान हो अथवा नहीं, हिंदू राज का सामना उन्हें करना पड़ेगा। क्या राजनीति मुस्लिम लीग की इस राजनीति से भी अधिक खराब हो सकती है, मुस्लिम लीग ने अल्पसंख्यक मुसलमानों के हितों का आलिंगन करते हुए बहुसंख्यक मुस्लिमों की वकालत करके उन्हें समाप्त किया। लीग के मौलिक लक्ष्य में कितना हेरफेर हुआ, कितना पतन एक हास्यास्पद स्थिति तक हुआ, यह देखा जा सकता है। हिंदू राज के विरूद्ध विभाजन का विकल्प और अधिक बुरा है।

VII

पाकिस्तान को लेकर मुस्लिम दृष्टिकोण में जो त्रुटियां हैं, उनमें से कुछ मेरे सामने आ चुकी हैं। और भी त्रुटियां हो सकती हैं, जो मेरी समझ में न आई हों। किंतु उनकी जो सूची इस समय है, वह भी काफी बड़ी है। मुसलमान उन्हें किस तरह दूर करने की सोचते हैं, यह प्रश्न मुसलमानों के लिए है, मेरे लिए नहीं। इस विषय का विद्यार्थी होने के नाते मेरा कर्तव्य उन त्रुटियों को जता देना है। वह मैंने कर दिया। कोई और प्रश्न मेरे पास उत्तर देने को नहीं है।

जो भी हो, दो और ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न हैं जिनकी चर्चा किए बिना यह विवाद समाप्त नहीं किया जा सकता था। इन प्रश्नों का उद्देश्य मेरे और मेरे आलोचकों के बीच जो भेद हैं, उसे साफ कर देना है। इन प्रश्नों में, एक तो मैं आलोचकों से पूछने का अधिकारी हूँ और दूसरे को आलोचक मुझसे पूछ सकते हैं।

पहला प्रश्न जो मैं आलोचकों से पूछना चाहता हूँ यह है कि इन त्रुटियों के परिप्रेक्ष्य में वे क्या आशा करते हैं? क्या वे यह आशा करते हैं कि यदि इस वाद–विवाद में मुसलमान हार जायें तो वे पाकिस्तान का नाम न लें? यह तो उन शर्तों पर निर्भर करता है जो विवाद को निश्चित करने के लिए अपनाई जाएंगी। हिंदू और मुसलमान उस तरीके पर चल सकते हैं, जिसे प्राचीन काल में ईसाई मिशनरियों ने हिंदुओं को ईसाई बनाने के लिए अपनाया था। इस तरीके के मुताबिक ईसाई मिशनरियों और ब्राह्मणों के बीच बहस का, जिसे जनता सुन भी सके, एक दिन निश्चित कर दिया जाता था। पहली शर्त तो ईसाई धर्म का प्रतिनिधित्व करती थी और दूसरी में हिंदू धर्म की व्याख्या होती थी। तीसरी शर्त यह होती थी कि जो अपने धर्म की पुष्टि में हार जाएगा, वह दूसरे के धर्म को स्वीकार करने को बाध्य होगा। यदि पाकिस्तान के मसले पर हिंदुओं और मुसलमानों के बीच झगड़ा निपटाने का यह तरीका स्वीकार किया गया होता तो त्रुटियों की इस श्रृंखला का कुछ लाभ हो सकता था। किंतु यह भूलने की आवश्यकता नहीं है कि किसी बहस को समाप्त करने का एक और तरीका है, जिसे 'जानसनी' तरीका कहा जा सकता है और जो उस तरीके पर आधारित है जिसे डॉ. जानसन ने पादरी बर्कले से बहस करने में प्रयोग किया था। बास्वेल लिखते हैं कि जब उन्होंने डॉ. जानसन को बताया कि पादरी बर्कले का मत यह कि पदार्थ का कोई अस्तित्व नहीं है और इस संसार में सब कुछ काल्पनिक है, एक कुतर्क है, पर उसका खंडन करना कठिन है, तो डॉ. जानसन ने एक भारी पत्थर पर जोर से पैर पटकते हुए तत्काल उत्तर दिया – 'मैं इसे इस तरह खंडित करता हूँ। हो सकता है मुसलमान इस बात पर राजी हो जाएं, जैसा कि अधिकांश मुस्लिम बुद्धिजीवी कहते हैं, कि पाकिस्तान का जो मसला है, उसका फैसला 'बहस' और 'तर्क' के परीक्षणों से हो। किंतु मुझे आश्चर्य नहीं होगा, यदि मुसलमान डॉ. जानसन का तरीका अपनाने का निश्चय कर लें और कहें कि भाड़ में जाएं तुम्हारे तर्क, हम तो पाकिस्तान चाहते हैं। आलोचकों को समझना चाहिए कि ऐसी स्थिति में पाकिस्तान के मसले को बिगाड़ने के लिए यदि उनकी मजबूरियों पर भरोसा किया गया, तो बिल्कुल बेकार होगा। इसलिए पाकिस्तान की त्रुटियों के तर्क का आनंद लेना निरर्थक है।

अब उस दूसरे प्रश्न को लिया जाए, जो मैंने कहा है कि आलोचक मुझसे पूछने के अधिकारी हैं। जो आपत्तियां मैंने प्रस्तुत की हैं, उन्हें देखते हुए पाकिस्तान के मामले में मेरी क्या राय है? अपनी राय के विषय में मुझे कोई संशय नहीं है। मेरा दृढ़ मत है कि कुछ स्थितियों के बने रहने पर, जो आगामी अध्यायों में उल्लिखित हैं, यदि मुसलमान पाकिस्तान लेने पर तुले हुए हैं तो वह उन्हें दिया जाना चाहिए। मैं जानता हूँ कि मेरे आलोचक मुझ पर तुरंत बेमेल बात कहने का लांछन लगाएंगे और ऐसे असाधारण निष्कर्ष निकालने के कारण मुझसे पूछेंगे – असाधारण उस दृष्टिकोण के कारण जो कि मैं इस अध्याय के पहले भाग में प्रकट कर चुका हूँ कि पाकिस्तान के पक्ष के मुस्लिम विवाद में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे मजबूर करने वाली ताकत कहा जा सके, जो कि निर्दयी भाग्य–निर्णायक कही जाति है। पाकिस्तान के मसले में जो कमियां मैंने गिनाई हैं, उनमें से किसी को भी मैं वापस नहीं लेना चाहता। फिर भी मेरा विचार है कि यदि मुसलमानों को पाकिस्तान चाहिए तो उन्हें वह दिए बिना कोई बचाव नहीं है। इस निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद भी मैं यह निस्संकोच कह सकता हूँ कि पाकिस्तान के तर्क में कोई दम नहीं है। मेरे फैसले में दो निर्देशक कारक हैं जो मसले का फैसला करने वाले हैं। पहला है भारत की सुरक्षा और दूसरा है मुसलमानों की भावना। मैं बताऊंगा कि ''मैं उन्हें फैसला करने के योग्य क्यों समझता हूँ और किस प्रकार वे मेरे विचार से पाकिस्तान के पक्ष में जाते हैं।

पहले प्रथम प्रश्न लिया जाए। कोई इस बात की अनदेखी नहीं कर सकता कि स्वतंत्रता पा लेना उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना उसे बनाए रखने के लिए पक्के साधनों का पाना। स्वतंत्रता को मजबूत रखने वाली तो अंततोगत्वा एक भरोसेमंद फौज है– ऐसी फौज, जिस पर हर समय और किसी भी घटनाकाल में देश के लिए लड़ने का विश्वास किया जा सके। भारत में फौज अवश्य ही संयुक्त होगी, जिसमें हिंदू और मुसलमान दोनों रहेंगे। यदि भारत पर किसी विदेशी शक्ति का आक्रमण होता है तो क्या फौज में शामिल मुसलमानों पर भारत की रक्षा का भरोसा किया जा सकता है? मान लीजिए कि हमलावार उनके सहधर्मी हैं, तो क्या मुसलमान उनकी तरफ हो जाएंगे या वे उनका सामना करेंगे और भारत को

बचाएंगे? यह अत्यंत अहम प्रश्न हैं। स्पष्टतया इस प्रश्न का उत्तर इस पर निर्भर करेगा कि फौज में शामिल मुसलमानों को राष्ट्र सिद्धांत, जो कि पाकिस्तान की नींव है, की छूत कहाँ तक लग गई है। यदि उन्हें यह छूत लग गई है तो भारत में फौज खतरे से खाली नहीं हो सकती। भारत की स्वतंत्रता की संरक्षिका होने के बजाए वह उसके लिए एक धमकी और भारी खतरा बनी रहेगी। मैं यह मानता हूँ। अंग्रेज जो तर्क देते हैं कि उनके द्वारा पाकिस्तान को अस्वीकृत कर देना भारत के हित में होगा, यह सुनकर मैं सुन्न हो जाता हूँ। कुछ हिंदू भी यही स्वर अलापते हैं। मैं विश्वास करता हूँ कि या वे जानते नहीं हैं कि भारत की स्वतंत्रता में निर्धारक कारक क्या हैं या वे भारत की रक्षा की बात एक स्वतंत्र देश के आशय से नहीं करते, जो अपनी सुरक्षा का स्वयं उत्तरदायी हो, बल्कि अंग्रेजों के एक अधिकृत देश के नाते करते हैं, जिसकी वे अनधिकार प्रवेश करने वाले से रक्षा करें। यह दृष्टिकोण बिल्कुल गलत है। प्रश्न यह नहीं है कि क्या अंग्रेज भारत का विभाजन न होने की स्थिति में बेहतर तरीके से भारत की रक्षा कर सकेंगे। प्रश्न यह है कि क्या भारतीय जन स्वतंत्र भारत की रक्षा कर सकेंगे? मैं फिर दोहराता हूँ कि एक ही उत्तर है कि भारतीय स्वतंत्र भारत की रक्षा एक ही दशा में कर सकेंगे, अर्थात यदि भारत में फौज अराजनीतिक रहती है, पाकिस्तान के जहर से अछूती। भारतीयों को मैं फौज के प्रश्न को उठाए बिना स्वराज्य पर विचार–विमर्श की वाहियात आदत के खिलाफ चेतावनी देता हूँ, जो इस देश में पैदा हो गई है। इससे बढ़कर घातक कुछ नहीं हो सकता, यदि यह न समझा जाए कि राजनीतिक फौज भारत की स्वतंत्रता के लिए सबसे बड़ा खतरा है। ऐसी स्थिति किसी भी फौज के न होने से भी बुरी है।

महत्वपूर्ण बात यह है कि फौज वह अंतिम स्वीकृति है, जो देश में सरकार को उस समय संभालती है, जब कोई विद्रोही या अड़ियल तत्व उसे चुनौती देता है। मान लीजिए कि तत्कालिक सरकार कोई ऐसी नीति अपनाती है, जिसका मुसलमानों का एक वर्ग घोर विरोध करता है। मान लीजिए प्रस्तुत सरकार को उस नीति का पालन कराने के लिए फौज को इस्तेमाल करने की जरूरत पड़ती है। तो क्या वह सरकार मुसलमानों पर भरोसा कर सकती है कि वे उसका आदेश मानेंगे और मुसलमान विद्रोहियों को गोली मार देंगे? यह फिर उसी बात पर निर्भर है कि कहाँ तक मुसलमानों को दो राष्ट्र सिद्धांत की छूत लग चुकी है। यदि उन्हें यह छूत लग चुकी है तो भारत एक विश्वसनीय और सुरक्षित सरकार नहीं बना सकता।

अब दूसरे महत्वपूर्ण कारक पर विचार करें, तो हिंदू जनता राजनीति में भावना को शक्ति के रूप में कोई महत्व देती नहीं जान पड़ती। मुसलमानों के विरूद्ध जीतने के लिए हिंदू दो कारणों पर भरोसा करते जान पड़ते हैं। पहला यह है कि भले ही हिंदू और मुसलमान दो राष्ट्र हों, वे एक राज्य में रह सकते हैं। दूसरा यह कि पाकिस्तान मुसलमानों की एक बलवती भावना पर आधारित है न कि स्पष्ट तर्कों पर। मैं नहीं जानता कि हिंदू ऐसे तर्कों से अपने को कब तक मूर्ख बनाएंगे। यह सत्य है कि पहला तर्क पूर्वोदाहरण के बिना नहीं है। साथ ही इसे समझने में अधिक बुद्धि की आवश्यकता नहीं कि इसका महत्व अत्यंत सीमित है। दो राष्ट्र और एक राज्य एक अच्छा बहाना है। इसमें वही आकर्षण है, जो एक धर्मोपदेश में होता है और इसका परिणाम मुस्लिम नेताओं का बदल जाना हो सकता है। किंतु एक धर्मोपदेश की तरह कहे जाने के बजाए यदि इसे अध्यादेश के रूप में निकालने और मुसलमानों से मनवाने का इरादा किया जाता है तो ऐसा करना एक पागलपन भरी योजना होगी, जिसे कोई भी स्वस्थ चित्त मनुष्य नहीं मानेगा। मुझे विश्वास है कि इससे स्वराज्य का उद्देश्य ही मारा जाएगा। दूसरा तर्क भी इतना ही मूर्खतापूर्ण है। पाकिस्तानी का मुस्लिम भावना की नींव पर खड़ा होना, कमजोरी की बात बिल्कुल नहीं है। वह वास्तव में इसका प्रबल तर्क–बिंदु है। यह जानने के लिए राजनीति की गहरी समझ की जरूरत नहीं है कि संविधान के कार्यान्वयन की क्षमता मुख से कह–भर देने की बात नहीं है। यह भावना का विषय है। एक संविधान को कपड़ों की तरह अनुकूल और मनमोहक होना चाहिए। यदि वह मनोहारी नहीं है तो चाहे जितना भी पूर्ण हो, काम नहीं कर सकता। यदि ऐसा संविधान बनता है जो एक निश्चित वर्ग की प्रबल भावनाओं के विपरीत जाता है, तो एकदम विद्रोह भले ही पैदा न करे, विनाशकारी तो होगा ही।

हिंदू यह बात नहीं समझ रहे हैं कि मान लीजिए एक भरोसेमंद फौज है, तो सैन्य–शक्तियों द्वारा लोगों पर शासन करना किसी देश की सामान्य विधि नहीं है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि शक्ति राजनीतिक शरीर की औषधि है और शरीर के रोगी होने पर प्रयुक्त होनी चाहिए। किंतु राजनीतिक शरीर की औषधि होने से ही शक्ति को उसकी नित्य की खुराक नहीं बनाया जा सकता। एक राजनीतिक शरीर को प्राकृतिक रूप से काम करना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब कि राजनीतिक शरीर के विभिन्न घटक तत्व साथ–साथ काम करने की इच्छा रखें और यथावत गठित प्राधिकार द्वारा बनाए गये नियमों और आदेशों का पालन करने को तैयार हों। मान लीजिए संयुक्त भारत के लिए नए संविधान में वे सभी बातें मौजूद हैं, जो मुसलमानों के हितों की सुरक्षा के लिए आवश्यक हैं। किंतु मान लीजिए मुसलमानों ने कह दिया कि 'आपकी सुरक्षा के लिए आपको धन्यवाद, हम आपसे शासित होना नहीं चाहते' और मान लीजिए वे विधान सभा का बहिष्कार करते हैं, कानून को मानने से इन्कार करते हैं, करों को देने का विरोध करते हैं, तो क्या होगा? क्या हिंदू अपनी संगीनों के बल पर मुसलमानों से आज्ञा मनवाने को तैयार हैं? क्या स्वराज लोगों की सेवा करने का अवसर होगा या हिंदुओं के लिए मुसलमानों को और मुसलमानों के लिए हिंदुओं को जीतने का मौका। स्वराज होना चाहिए लोगों के द्वारा, लोगों के लिए, लोगों का शासन। यह स्वराज का यथार्थ हेतु है और स्वराज का एकमात्र औचित्य। यदि स्वराज को ऐसे युग में प्रवेश करना है जिसमें हिंदू और मुसलमान एक–दूसरे के विरूद्ध योजना बनाने में लगे होंगे, हरेक अपने प्रतिद्वंद्वी को जीतने की साजिश में लगा होगा तो हमें स्वराज क्यों लेना चाहिए और प्रजातांत्रिक राष्ट्रों को ऐसे स्वराज को अस्तित्व में ही क्यों आने देना चाहिए? यह जाल छल और पथभ्रष्टकारी होगा।

गैर–मुस्लिम इस बात से अनजान दिखाई देते हैं कि उन्हें ऐसी स्थिति में खड़ा कर दिया गया है जिसमें उन्हें विवश होकर विविध विकल्पों में चुनाव करना पड़ेगा। मैं उन्हें बता दूँ। पहले तो उन्हें भारत की स्वतंत्रता और भारत की एकता के बीच एक को चुनना है। यदि गैर–मुस्लिम भारत की एकता पर जोर देते हैं तो वे भारत की स्वतंत्रता की शीघ्र प्राप्ति को संकट में डालते हैं। दूसरा विकल्प भारत की रक्षा की सबसे पक्की विधि से संबंध रखता है कि क्या वे स्वतंत्र और संयुक्त भारत में मुसलमानों पर भरोसा कर सकते हैं? क्या वे गैर–मुस्लिमों के मेलमिलाप के साथ दोनों की संयुक्त स्वतंत्रताओं की रक्षा के लिए आवश्यक इच्छा पैदा करेंगे और बनाए रखेंगे? या भारत का विभाजन कर देना बेहतर है, जिससे कि मुस्लिम भारत की सुरक्षा मुसलमानों के सुपुर्द होने से पक्की हो जाए और गैर–मुस्लिम भारत की सुरक्षा गैर–मुसलमानों के हाथ में सुदृढ़ रहे।

पहले तो मैं भारत की एकता से अधिक भारत की स्वतंत्रता को पसंद करता हूँ। सीन, फीनर, जो दुनिया–भर के राष्ट्रवादियों में सबसे अधिक कट्टर थे और जो भारतीयों की तरह ऐसे ही विकल्पों में डाल गए थे, उन्होंने आयरलैंड की एकता के मुकाबले आयरलैंड की स्वतंत्रता को चुना था। गैर–मुस्लिम, जो विभाजन के खिलाफ है, एक समय फीनों के उपाध्यक्ष रहे रेवरेंड माइकेल ओ फ्लेनागन की इस सलाह से बहुत लाभ उठा सकते हैं, जो उन्होंने आयरलैंड के विभाजन पर आयरलैंड के राष्ट्रवादियों को दे थी। उन्होंने कहा था'' –

''यदि हम गृहं शासन को स्वीकार करके अल्सटर के संघी भागों को बाहर जाने देना पंसद करते हैं तो, हम संसार के सामने इसकी पुष्टि कैसे करेंगे? हम बता सकते हैं कि आयरलैंड एक ऐसा द्वीप है, जिसकी एक निश्चित भौगोलिक सीमा है। यह तर्क उन अनेक द्वीपीय राष्ट्रों को सही लग सकता है जिनकी स्वयं की निश्चित भौगोलिक सीमाएं शायद ही कभी एक हो पाती हैं। भूगोल ने स्पेन और पुर्तगाल को एक राष्ट्र बनाया, इतिहास ने उन्हें दो बना दिया है। भूगोल ने नार्वे और स्वीडन को एक राष्ट्र बनाने का भरसक प्रयत्न किया, इतिहास उन्हें दो बनाने में सफल हुआ। उत्तरी अमेरिकी महाद्वीप में जो अनेक राष्ट्र हैं, भूगोल के पास उनसे कहने को शायद ही कुछ होगा, सब कुछ इतिहास ने किया है। यदि कोई यूरोप के भौतिक नक्शे से राजनीतिक नक्शा बनाने की कोशिश करता, तो वह अंधकार में भटक जाता। भूगोल ने आयरलैंड को एक राष्ट्र बनाने का कठिन कार्य किया, इतिहास ने इसके विपरीत कार्य किया है। बात इतनी है कि आयरलैंड द्वीप और आयरलैंड की राष्ट्रीय यूनिट एक नहीं हैं। अंतिम विश्लेषण यह है कि राष्ट्रीयता की परीक्षा लोगों की इच्छा है।''

ये शब्द वास्तविकता के धरातल से निकले गंभीर विचार हैं। खेद है कि भारत में इनका अभाव है।

दूसरे मसले पर मैं भारत का मुस्लिम भारत और गैर–मुस्लिम भारत में विभाजन बेहतर समझता हूँ जो कि दोनों को सुरक्षा प्रदान करने का सबसे पक्का और सुरक्षित तरीका है। अवश्य ही दोनों विकल्पों में से यह अधिक सुरक्षित है। मैं जानता हूँ कि यह तर्क दिया जाएगा कि स्वतंत्र और संयुक्त भारत के प्रति दो राष्ट्र–सिद्धांत की छूत से पैदा होने वाली मुसलमान सेना की वफादारी के प्रति आशंका केवल काल्पनिक आशंका है। यह बेशक सही है। मेरे द्वारा चुने गए विकल्प की उपयुक्तता से इसका कोई विरोध नहीं है। मैं गलत हो सकता हूँ। किंतु मैं विरोध की आशंका न रखते हुए और निश्चित रूप से वर्क के शब्दों का प्रयोग करते हुए, यह कह सकता हूँ कि सुरक्षा पर भारी भरोसा रखकर नष्ट होने की बजाय सुरक्षा पर अतिशय ध्यान देने के लिए हंसाई कराना बेहतर है। मैं मामलों को इत्तिफाक पर छोड़ देना नहीं चाहता। भारत की सुरक्षा जैसे महत्वपूर्ण विषय को संयोग पर छोड़ देना सबसे बड़ा अपराध करना है।

पाकिस्तान के लिए मुसलमानों की माँग को कोई मंजूर नहीं करेगा, जब तक कि उसे इसके लिए मजबूर न किया जाए। साथ ही जो बात सुनिश्चित है, वह यह कि साहस एवं सामान्य समझबूझ से उसका सामना न करना भूल होगी। यह भूल ऐसी ही होगी जैसे उस भाग को खो देना, जिसको स्थाई रखने के लिए व्यर्थ प्रयत्न करके बचाया जा सकता है।

इन्हीं कारणों से मेरा ख्याल है कि यदि पाकिस्तान के मसले पर मुसलमान झुकते नहीं हैं, तो पाकिस्तान बन कर रहेगा। जहाँ तक मेरा संबंध है, केवल यही महत्वपूर्ण प्रश्न है कि क्या मुसलमान पाकिस्तान बनाने पर तुले हुए हैं? या पाकिस्तान केवल एक पुकार है? क्या यह केवल एक क्षणिक विचार है या यह उनके स्थायी उत्साह का प्रतीक है? इस बात पर मतभेद हो सकता है। एक बार यह निश्चित हो जाने पर कि मुसलमान पाकिस्तान चाहते हैं, तो इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता कि इस सिद्धांत को मान लेना ही बुद्धिमानी की बात होगी।

साभार
बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर, सम्पूर्ण वाङ्मय
खण्ड–15, (पृष्ठ सं० 353 से 374 तक)
डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

रक्षाबन्धन

श्रावण शुक्ल पूर्णिमा को रक्षाबन्धन का त्यौहार मनाया जाता है। इस दिन वर्षा का हवन यज्ञों द्वारा आह्वान किया जाता है। इस दिन दो त्यौहार इकट्ठे ही हो जाते हैं। एक श्रावणी और दूसरा रक्षाबन्धन। इस दिन ब्राह्मण अपनी रक्षा के लिए जिजमान के है और बहन भाई को राखी बांधते हैं। इस दिन द्विज लोग नया जनेऊ धारण करते हैं। इस सम्बन्ध में एक कथा प्रचलित है। एक बार आर्य देवता और दैत्य अनार्यों में 12 वर्ष तक युद्ध होता रहा अनार्य विजयी हो गये और इन्द्रादि पराजित हो गए। इन्द्र ने गुरू बृहस्पति से कहा कि अब तो न मैं ठहर सकता हूँ न ही भाग सकता हूँ अब तो मरना ही निश्चित है। तब गुरू की सलाह पर इन्द्र ने अपनी पत्नी का प्रयोग कर जाल रचा और मोहिनी की भांति दैत्यों के साथ एक पोटली बांधकर छल किया तथा दैत्यों को युद्ध स्थल से गुमराह कर हटा दिया तभी से यह त्यौहार मनाया जाता है।

विधि–विधान : द्विज लोग गांव के समीप तालाब या नदी में पुरोहित की बताई विधि के अनुसार श्रावणी कर्म कराते हैं। शरीर की शुद्धि के लिये दूध, दही, घी, गोबर, गौमूत्र पंच गव्य बनाकर दिए जाते हैं व खीर, घी, शक्कर जौ का विधिवत हवन होता है। उपाकर्म कहते है फिर पानी में खड़े होकर सूर्य की स्तुति होती है। सात ऋषियों व पित्रों का पूजन कर दधि व सत्तू की आहुतियां दी जाती हैं। इसे उत्सर्जन कहते हैं। दोपहर के बाद सूती ऊनी वस्त्र लेकर चावल रख गांठ लगाकर हल्दी केसर के रंग में रंगकर उसे रख देते हैं। गोबर से लिपवा कर चावलों से चौक पुरवा कर उस पर अन्न भरा घड़ा रखते हैं और पुरोहित को बुलाकर घड़े का पूजन कराते हैं। चावल की पोटरियाँ यजमान के हाथ में बांधते है और ब्राह्मण मन्त्र पढ़ते हैं। इस दिन नदी के किनारे ब्राह्मण नया जनेऊ धारण करते हैं। औरतें आदमियों की आदमियों की आरती उतारती हैं। उद्देश्य एवं रहस्य : इस त्योहार के निम्नलिखित उद्देश्य रहे हैं।

(1) यह ब्राह्मण पूजा का दिन है। इस दिन ब्राह्मणों को नरम और मीठा भोजन कराया जाता है। ब्राह्मण अपनी रक्षा का भार राखी बांधकर दूसरों पर डालता है और इसी बहाने वह अन्न, सोना, दूध, दही का दान एठता है।

(2) दूसरा इस त्योहार का रहस्य यह है कि यही अनार्यों को दमन उचित ठहराते थे। त्यौहार आर्य और अनार्य संघर्ष एवं अनार्य दमन की यादगार है। यह इस बात का भी रहस्य है कि आर्य जब हार जाते थे तो स्त्रियों को कपट के लिये काम में लेते थे। कपट से भी अनार्यों को दमन उचित ठहराते थे।

(3) हवन यज्ञों में विधान के द्वारा ब्राह्मण पुरोहितों का दान से हित साधन करना भी इसका उद्देश्य रहा है।

(4) यह त्योहार स्त्री दासता का प्रतीक है। स्त्री को निर्बल अबला कहकर इसकी रक्षा का भार पुरूष पर डाला गया हैं। अपनी रक्षा की राखी बांधकर स्त्री सदैव दूसरों की आश्रित और अपने को हीन समझती रहे यह भी इस त्यौहार का उद्देश्य है।

(5) गाय की पूजा और पवित्रता की स्थापना हेतु गौमूत्र का हवन करना गाय की भक्ति को प्रोत्साहन देना है।

इस प्रकार यह त्यौहार अर्नाय, जो आज के शूद्र हैं, उनका नहीं है। दशहरा क्षत्रियों का दिवाली वैश्यों की और इसी प्रकार श्रावणी ब्राह्मणों का ही त्योहार है।

साभार–हिन्दुओं के वर्त पर्व और त्यौहार
पृ.सं. 33 से 35 तक
एस.एल.सागर

15 अगस्त की हार्दिक शुभकामनाएं...
रामचरन
पम्प आपरेटर
कानपुर विकास प्राधिकरण

15 अगस्त की हार्दिक शुभकामनाएं...
आनन्द मोहन
संयुक्त आयुक्त
हथकरघा एवं वस्त्र उद्योग, कानपुर

15 अगस्त की हार्दिक शुभकामनाएं...
धीरेन्द्र कुमार
लिपिक
कानपुर विकास प्राधिकरण, कानपुर
मो० : 9721358899

15 अगस्त की हार्दिक शुभकामनाएं...
कमलेश कुमार
वरिष्ठ प्रबन्धक
उ.प्र. राज्य हथकरघा निगम, कानपुर
मो.: 7905637059

15 अगस्त की हार्दिक शुभकामनाएं...
अजय कुमार
लिपिक
कानपुर विकास प्राधिकरण, कानपुर
मो० : 7905305856

15 अगस्त की हार्दिक शुभकामनाएं...
यतीन्द्र सोनकर
द्वारा – शिव शंकरलाल विषारद
स्मारक समिति, कर्नेलगंज, कानपुर

15 अगस्त की हार्दिक शुभकामनाएं...
रामस्वरूप
अध्यक्ष लेबर डिर्पाटमेन्ट मिनिस्टीरियल
एम्पलाइज एसोसिएशन
श्रमायुक्त कार्यालय कानपुर

15 अगस्त की हार्दिक शुभकामनाएं...
राजेन्द्र कुरील
लेखाकार पी.पी.एन. डिग्री कालेज
कानपुर

15 अगस्त की हार्दिक शुभकामनाएं...
नीतू जयसवार
अनुदेशिका भाषा हिन्दी
राजकीय औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान महिला
लाल बंगला, कानपुर, मो. : 9838291001

15 अगस्त की हार्दिक शुभकामनाएं...
अर्चना कैथवार
प्रधान सहायक
श्रमायुक्त कार्यालय, कानपुर

15 अगस्त की हार्दिक शुभकामनाएं...
सन्तलाल
प्रधान सहायक : श्रमायुक्त कार्यालय, कानपुर
मो. : 9450153839

पन्द्रह अगस्त

जय हो, जय हो।
पन्द्रह अगस्त
कितने हुये शिकस्त।
बच्चे बूढ़े और जवान
सभी पड़े हैं पस्त।
तोड़ी गुलामी की जंजीरे,
और..... और चमक गये फकीरे।
जो हुये आबाद
किया देश बरबाद
वह बना व्यक्ति महान
जिसने ली थी अलग देश की ठान।
एक बना भारत,
दूसरा पाकिस्तान।
बाबा की भी थी एक अलग देश की माँग,
वो भी चाहते थे अछूतिस्तान।
पर गाँधी अनशन पर बैठ गये
हिन्दू नेता सब ऐंठ गये।
पूना पैकर कर दिया
बाबा को कानून मन्त्री बना दिया
रास्ते से उनको हरा दिया।
दलितों की स्थिति देखकर,
बाबा ने किया पीछे कमान,
फिर भी दिया अधिकार समान।
देश का किया संविधान तैयार,
दबों कुचलों को दिया संवैधानिक हथियार।
जब हुआ संविधान पास,
दलितों की बढ़ी आस
चली जब स्वतन्त्रता की आँधी,
तभी शहीद किये गये गाँधी।
हर व्यक्ति अपने को छिपा रहा
और गाँधी टोपी लगा रहा।
भाषणों से जनता को करते आगाह,
और.....और.....और
देश हो गया तबाह।
देश की जनता महँगाई से पड़ी पस्त,
जय हो.....जय हो पन्द्रह अगस्त।

– यतीन्द्र सोनकर

हत्या के कारणों की मीमांसा

''यह मेरा प्रण है कि मैं दबे–पिसे लोगों की सेवा में और उन्हीं के कल्याण के लिए मरूंगा जिनके बीच मेरा जन्म और पालन–पोषण हुआ और जिनके बीच मैं रहा हूँ। मैं अपने इस पवित्र उद्देश्य से एक इंच भी नहीं हटूँगा, और न ही अपने निंदको की उग्र और अपमानपूर्ण आलोचना की परवाह करूँगा''– डॉ. आम्बेडकर 21 मई, 1932 –पुना में दिया गया भाषण।

हमने पिछले अध्याय में देखा की, डॉ बाबासाहब को सात अलग–अलग षड़यंत्रों द्वारा मारने का प्रयत्न किया गया। और वे प्रयत्न किन्हीं प्रकारों से असफल भी हो गये। तब ब्राह्मणवादियों ने समझ लिया की बाह्य आक्रमणों से हत्या करना सम्भव नहीं है इसलिए अंतर्गत आक्रमण की योजना बनाई। हत्या का यह आठवाँ प्रयत्न इन लोगों ने यशस्वी कर दिया। डॉ. बाबा साहब की हत्या करने वाली शक्ति आज भी अस्तित्व में है। बाबासाहब की हत्या के कारण ही उन्हें देश भर में व्यवस्था पर अनियंत्रित अधिकार प्राप्त हो सका। यह भी उतना ही सत्य है। इसलिए उस शक्ति की भयानक विनाश लीला को समझते हुये बाबासाहब की हत्या की कारण मिमांसा हम कर रहे हैं। ये कारण कुछ लोगों को विचित्र लग सकते हैं परन्तु यही सही कारण हैं। यह शोध हमने जिन मूल साधनों के आधार पर किया है, उनसे ही यह आश्चर्यकारक कारणों का खुलासा हुआ है।

डॉ. बाबासाहब, ब्राह्मणी व्यवस्था के लिये बहुत ही बड़ी चुनौती थी। कारण बाबासाहब मूलनिवासी बहुजनों को प्राप्त, एक ऐसे महापुरूष थे, जो 6 हजार जातियों को जोड़ने का महान कार्य कर रहे थे। इस महान कार्य की पूर्ति के लिये उन्होंने आंदोलन शास्त्र का भी विकास किया। देशव्यापी संगठन निर्माण किया। मूलनिवासी बहुजनों में चेतना निर्माण की। गुलाम को गुलाम होने का एहसास करा दिया। डॉ. बाबासाहब आम्बेडकर की हत्या ही ब्राह्मण के सामने आखरी पर्याय बचा था। परंतु यह हत्या की योजना बनाते समय उन लोगों ने कुटिल एवं षड़यंत्रकारी बुद्धि का प्रयोग किया। उसने हत्या तो की ही परंतु प्रचार उल्टा किया की नैसर्गिक मृत्यु हुई। ब्राह्मणी व्यवस्था को बचाने के लिये सभी ब्राह्मणों ने उस षड़यंत्र का समर्थन किया। ब्राह्मण परिस्थितिनुसार अपना रंग बदलता है। ब्राह्मण कहीं भी जाये, किसी भी संगठन में जाये, वो ब्राह्मण ही रहता है। इस तरह सभी ब्राह्मणों का उद्देश्य इस व्यवस्था पर वर्चस्व स्थापित करना ही होता है। शिक्षित वर्ग में, ब्राह्मणी व्यवस्था के प्रति आकर्षण पैदा कर उन्हें दलाल व्यवस्था में रूपांतरण करना, यह ब्राह्मणी तंत्र है। परंतु आज भी अशिक्षित वर्ग और आदिवासी वर्ग में, ब्राह्मणों से सावधान रहो' ऐसा तत्वज्ञान जिंदा है। ब्राह्मणों के कपटी चरित्र को दर्शाने वाली देशव्यापी कहावतें प्रचलित हैं। ऐसी कहावतें असंख्य हैं। एक कहावत पूर्वी भारत के झारखंड–आदिवासी भाग में प्रसिद्ध है। देखिये, ''कैइले बामन दिखने वाला, साप खेड़ले तूरे खाबे बामून खेड़ले तूरन गुष्टिरे खावे।'' अर्थात–''ब्राह्मण अधिक जहरीला है की साँप? साँप यदि काटता है तो हम अकेले मरेंगे, परन्तु ब्राह्मण ने यदि काटा तो तुम्हारी पीढ़ी दर पीढ़ी का सत्यानाश तय है।'' आदिवासियों में ब्राह्मणों से सावधान रहो, जो संदेह है वह बहुत मार्मिक है।

डॉ. बाबासाहब की हत्या के कारण

डॉ. बाबासाहब की हत्या के कारण और उसकी पृष्ठभूमि का संक्षिप्त इतिहास जानना और समझना बहुत जरूरी है। उनकी हत्या के कारणों के शोधकार्य में हमें जो जानकारियाँ प्राप्त हुई हैं, वो निम्न हैं–

1. पूना समझौता का धिक्कार करना अर्थात ब्राह्मण वर्चस्व को नकारना, हत्या का कारण बना।

2. देशव्यापी संगठन निर्माण कर एस.सी.एस.टी. जातियों की समस्याएँ हल की, इसी प्रकार ओ.बी.सी. का मुद्दा उठाने के कारण ब्राह्मणी व्यवस्था को झटका लगा। इसलिये ब्राह्मणों ने उनकी हत्या की।

3. ब्राह्मणी व्यवस्था को नकार कर याने बी.पी.सी (ब्राह्मणीकल पीनल कोड) आय.पी.सी. (इंडियन पीनल कोड) लागू किया। ब्राह्मणी व्यवस्था को कानून के माध्यम से नकारने के कारण हत्या की गई।

4. 'दो वर्षों में मैं भारत को बौद्धमय कर दूंगा'– यह बाबासाहब का विधान, उनकी हत्या का कारण बना।

5. सभी सामाजिक समूह शासक न बनें इसलिए हत्या की गई।

उपरोक्त कारणों का अध्ययन एवं विश्लेषण करने पर ही यही दिखाई देता है कि, इस घटना को अंजाम देने के लिए मात्र एक दो व्यक्तियों का उपयोग नहीं किया गया है परन्तु एक बड़ा समूह इस षड़यंत्र के पीछे कार्यरत था। क्रांग्रेस, यह ब्राह्मणी पक्ष, इस षड़यंत्र में सीधे सहभागी था। रामदासी सेवक संघ का इस काम के लिए पूर्ण समर्थन था।

पूना समझौता में डॉ. बाबासाहब आम्बेडकर के हत्या के कारण छुपे हैं। आईये इस बिंदू पर थोड़ा विस्तार से विचार करें। डॉ. बाबासाहब आम्बेडकर ने उम्रभर पुणे समझौता का विरोध किया। उनके अनुसार पूना समझौता, मूलनिवासी बहुजनों को प्रतिनिधित्वहीन करता है। इसका सीधा अर्थ यह है कि, जिस ब्राम्हणी व्यवस्था के हम शिकार हैं, वही ब्राह्मणी व्यवस्था इस पुणे करार के कारण जीवित है। ब्राह्मण का अनियंत्रित वर्चस्व रहता है। इस व्यवस्था से समाज को सच्चे प्रतिनिधी नहीं मिलते हैं। परन्तु उलट उससे टूल, स्टूज, एजंट याने दलाल और भडवे पैदा होते है। तलवे चाटने वाले और दुम हिलाने वाले कुत्ते तैयार होते हैं। 29 अक्टूबर 1951 को पटियाला (पंजाब) में शेडयुल्ड कास्ट फेडरेशन की विशाल सभा बाबासाहब ने ली। उस सभा में पूना समझौता के कारण चुने गये मंत्रियों, नेताओं को 'हरिजन मंत्री' सम्बोधित किया गया। 'हरिजन' शब्द गांधी जी का था। इस हरिजन शब्द का उनके ही विरोध में प्रयोग में लाया गया। पूना समझौता के कारण कांग्रेस के भरोसे पर चुनकर आये उम्मीदवार– 'वे कुत्तों के जैसा अपने स्वामि के पैर चाटते हैं।' ऐसे शब्दों में टीका की।

डॉ. आम्बेडकर की 'पूना समझौता' धिक्कार की विचारधारा आज भी ब्राह्मणवादियों को अखरती है। ब्राह्मणवादियों का वर्चस्व सदा कायम रहे, इसी हेतु से पूना समझौता हुआ था। परन्तु बाबासाहब ने अपनी पूर्ण आयुष्य पूना समझौते का विरोध किया। गांधी और कांग्रेस ने बाबासाहब को दबाने का प्रयत्न किया परन्तु बाबासाहब उनके सामने झुके नहीं। सन 1932 से 1942 तक के इन 10 वर्षों में बाबासाहब ने क्रांग्रेस के विरोध में एक देशव्यापी बड़ी शक्ति खड़ी की। बाबासाहब का नेतृत्व कौशल्य इतना जबरदस्त था की, उनके सामने कांग्रेसी आदमी खड़ा ही नहीं हो सकता था। 18, 19 और 20 जुलाई, 1942 को नागपुर में आल इंडिया शेडयुल्ड कास्ट फेडरेशन का राष्ट्रीय स्तर पर भव्य सम्मेलन हुआ। 75 हजार कार्यकर्ता देशभर से आये थे। कांग्रेस को इस सम्मेलन के कारण डर पैदा हो गया कि अब! इस स्वाभीमानी आंदोलन को दबाना तो कैसे? ''हमारी लड़ाई केवल सत्ता और संपत्ती के लिए नहीं है, वह संपूर्ण आजादी के लिए है।'' जैसे ही बाबासाहब ने घोषित किया कांग्रेस और नेहरू को उसका धक्का लगा। अर्थात यदि बाबासाहब सफल हो गये तो ब्राह्मणों का क्या होगा? ब्राह्मणों के वर्चस्व को यदि धोखा था तो वह केवल मात्र बाबासाहब से ही।

19 मार्च 1947 को 'स्टेट अंड मायनारिटी' यह लेखी मेमोरेण्डम संविधान सभा को बाबासाहब ने दिया। 'पूना समझौता' का धिक्कार किया और इतना ही नहीं तो सन 1946 में संपूर्ण देशभर में पूना समझौता के विरोध में रैली और प्रदर्शन और जेलभरो आंदोलन किया। समग्र गांधी साहित्य में, एक पत्र मिला है, जिसमें खुद गांधी को बाबासाहब के आंदोलन से भय पैदा हो गया था, ऐसा उल्लेख हैं पूना समझौता का इतना बड़ा धक्का कांग्रेसी लोगों को हो गया था। इस देशव्यापी आंदोलन के कारण संपूर्ण भारत में कार्यकर्ता जेल जाने लगे। महाराष्ट्र में आर.आर.भोले के नेतृत्व में पूना समझौता का विरोध किया। उत्तर प्रदेश में आगरा शहर में एक अत्यंत वयोवृद्ध व्यक्ति मास्टर मानसिंग अभी भी जीवित है, उन्होंने पूना समझौता धिक्कार आंदोलन में भाग लिया था और उसे भी जेल हुई थी। कांग्रेस ने पहले सार्वजनिक चुनाव में षड़यंत्र की पराकाष्ठा कर दी और बाबासाहब को संसद में जाने ही नहीं दिया। और इसी उद्देश्य से कांग्रेस ने डांगे इस कम्युनिस्ट ब्राह्मण को भी नियंत्रित कर लिया। इसके बाद बाबासाहब भंडारा (विदर्भ) से आरक्षित मतदार संघ से चुनाव लड़े और पुनः इतना ही नहीं तो सर्वसाधारण मतदार संघ से भी चुनाव लड़े। वहाँ भी कांग्रेस ने भीतर घात लगाकर षड़यंत्र किया। डॉ. बाबासाहब आम्बेडकर जैसे व्यक्ति को जिन्होंने लोकतंत्र की निर्मिती भारत में

सेवा में,

नाम श्री.....

पता .....

.....

.....

की और एक इतिहास रचा दिया, उन्हें ही उस संसदीय लोकतंत्र से बाहर रखने का षड़यंत्र कांग्रेस ने किया। डॉ. बाबासाहब यदि लोकसभा में गये तो क्या हंगामा होगा इसकी संकल्पना नेहरू को थी। इसी नेहरू ने तीन प्रतिशत युरेशियन ब्राह्मणों का वर्चस्व स्थापित कर दिया। लोकतंत्र से बाहर रखने का षड़यंत्र कांग्रेस ने किया। डॉ. बाबासाहब यदि लोकसभा में गये तो क्या हंगामा होगा इसकी संकल्पना नेहरू को थी। इसी नेहरू ने तीन प्रतिशत युरेशियन ब्राह्मणों का वर्चस्व स्थापित कर दिया।

डॉ. बाबासाहब आम्बेडकर ने दूरदृष्टि से अनुभव कर लिया था कि, भविष्य में कांग्रेस का वर्चस्व देश पर कायम रहा तो, देश का सत्यानाश होगा इसलिये उन्होंने ऐसी भावी रणनीति बनाई जो ब्राह्मणवादियों को बहुत खटकने लगी। बाबासाहब को पुर्वानुमान था इसलिये उन्होंने संविधान सभा में जो भाषण दिया उसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से इशारा किया, 'जिस संविधान में आपने लोगों का, लोगों के लिए चुना हुआ शासन इस तत्व की सुरक्षा की है उसे अगर आप सुरक्षित रखना चाहते हो तो, हमारी राह में कौन सी रूकावटे आनेवाली हैं इस बात को आपकों पहले ही समझ लेना चाहिए, ताकि लोगों ने चुनकर दी हुई सरकार की तुल नामें 'लोगों के लिए सरकार' को लोग अधिक पसन्द करने लगेंगे, इस बात के लिए आप दुर्बल ना हो, देश की सेवा करने का यही सबसे अच्छा एकमेव मार्ग है। दूसरा इससे भी अच्छा मार्ग मुझे पता नहीं।''

यदि लोगों की आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का समाधान नहीं हुआ तो यही लोग लोकतंत्र का मंदिर नष्ट कर देंगे। बाबा साहब का अनुमान सही निकला और उसका कारण पुणे समझौता है।

शेडुल्ड कास्ट फेडरेशन की विविध बैठकें हुई। उन बैठकों में आरक्षित मतदार संघ अर्थात पुणे समझौता का विरोध किया गया। डॉ. बाबासाहब आम्बेडकर का एक साक्षात्कार बी.बी.सी वर्ल्ड लंदन ने लिया। उस ऐतिहासिक साक्षात्कार को हमने बाबासाहब की 19 अप्रकाशित डायरियों की परिशिष्ट में छपाया है। यह भेंट 1955 में ली गई थी। उस भेंटवार्ता में उन्होंने पुणे समझौता का धिक्कार किया था। वर्ष में केवल एक बार संयुक्त मतदार संघ पद्धती के लिए एक कतार में खड़े होने से हमारे जीवन में कौनसा राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक बदल होता है? ऐसा प्रश्न भी उठाकर उस पद्धती का धिक्कार किया है। भेटवार्ता के अंत में उन्होंने यह भी कहा, ''मैंने गांधी को कभी भी महात्मा नहीं कहा और गांधी महात्मा बनने लायक भी नहीं है।''

बौद्ध धर्म स्वीकार करने के पूर्व ही पुणे समझौता अर्थात आरक्षित मतदार संघ पद्धति नकारने की योजना बनाई गई थी। नये सिरे से अपने राजनैतिक पक्ष की रचना कर विस्तृत आधार पर उसका नियोजन करने की संकल्पना आकार ग्रहण करने वाली थी। इस राजनैतिक दल का नामकरण ध्येय, उद्देश्य, दृष्टिकोण आदि सबकुछ निश्चित हो गया था। यदि डॉ. बाबासाहब आम्बेडकर, पुणे समझौता की यंत्रणा को अर्थात षड़यंत्र को पराजीत करने में यशस्वी हो गये तो वे अपने आयुष्य में ही संसद में बहुमत सिद्ध करने लायक हो जायेंगे। इतना ही क्यों, विरोधी पक्ष की भी स्थापना कर देंगे, इसलिए किस आधार पर यह कहा जा सकता है कि, उनकी हत्या करें ऐसा ब्राह्मणों को नहीं लगा होगा? डॉ. बाबासाहब ने अपनी भावी योजना में कांग्रेस का पत्ता पूरी तरह साफ करने की योजना बनाई थी। अल्पसंख्यक ब्राह्मणों का बहुसंख्यक लोगों पर जो वर्चस्व स्थापित करने का तंत्र है व लोकतंत्र नहीं है, परंतु अलोकतंत्र है। ब्राह्मणों के वर्चस्व को जब–जब धोखा उत्पन्न होता है तब वो हत्याकांड का सहारा लेता है और अपना वर्चस्व बनाये रखता है, यह उनका इतिहास है।

साभार

डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर की हत्या किसने क्यों और कैसे की?

पृ.सं. 189 से 191 तक।

प्रो. विलास खरात